# जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2532

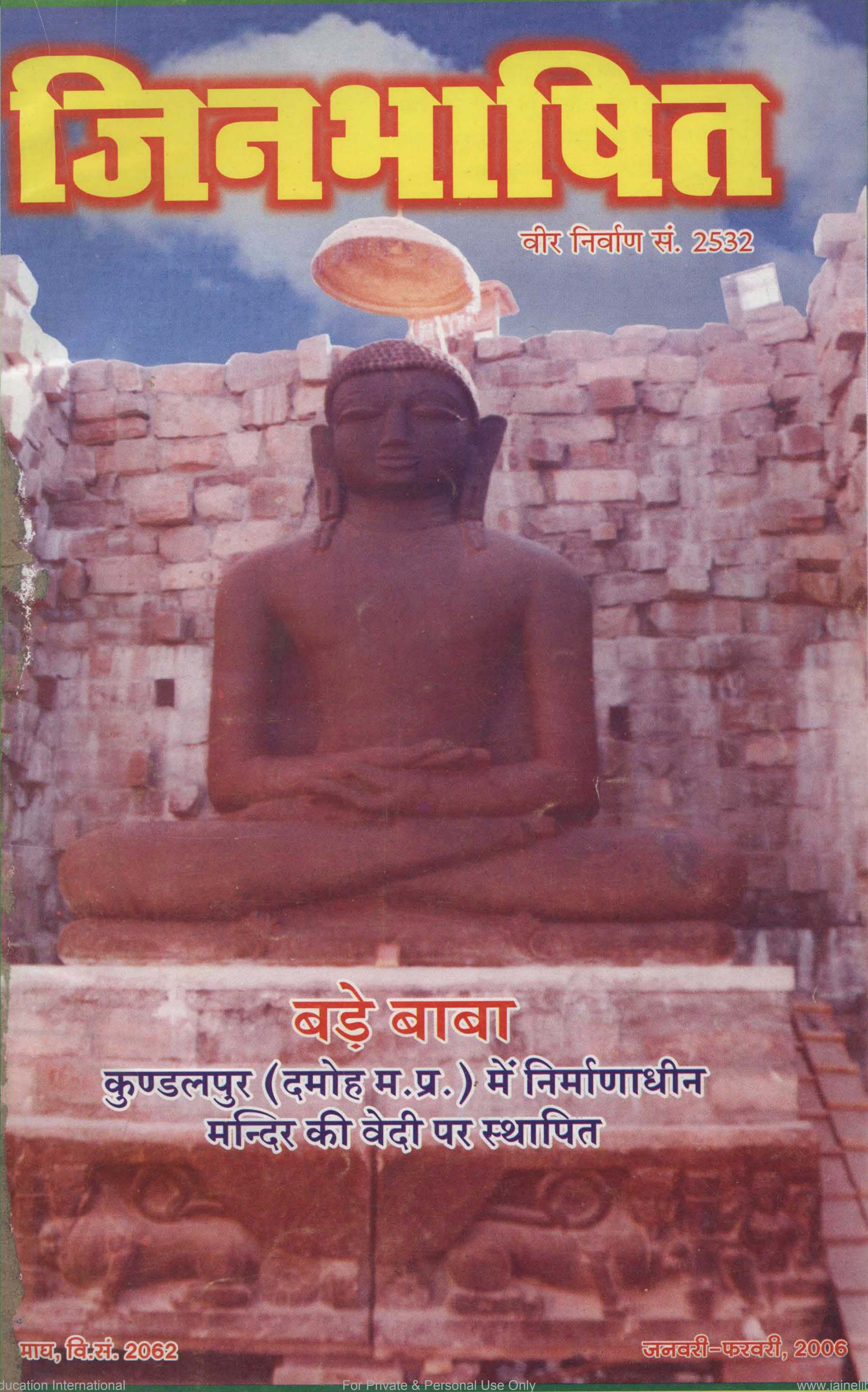

## बड़े बाबा

कुण्डलपुर (दमोह म.प्र.) में निर्माणाधीन
मन्दिर की वेदी पर स्थापित

माघ, वि.सं. 2062

जनवरी-फरवरी, 2006

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# उच्चतम न्यायालय में दयोदय का उदय हुआ

• आचार्य श्री विद्यासागर जी

**उच्चतम न्यायालय द्वारा गोवंश-वध को प्रतिबंधित किये जाने के प्रसंग में बीना ( बारहा ) म.प्र. में अभिव्यक्त उद्गार**

"सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह बहुत ही पवित्र कार्य हुआ है। यह राष्ट्रीय घोषणा ही नहीं, बल्कि इसका प्रभाव अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी पड़ेगा। लोग अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होनेवाली घटनाओं पर दृष्टि रखते ही हैं। भारत लोकतांत्रिक दृष्टि रखनेवाला बड़ा राष्ट्र है। न्यायालय की यह घोषणा भारत के ही उत्कर्ष के लिये नहीं, अपितु विश्व के उत्कर्ष के लिये भी कारणभूत होगी। सुप्रीमकोर्ट में सात जजों की बैंच ने बहुमत से घोषणा की है कि गोवंश वध के योग्य नहीं है, अतः उसे सुरक्षित रखा जाये। परीक्षार्थी परीक्षा देकर बैठता नहीं है, बल्कि सफलता की खबर सुनने को आतुर रहता है। वैसे ही अब विश्वास साकार हुआ कि अहिंसा की आराधना न्यायालयों में आज विद्यमान है। इस निर्णय से लगा कि उच्चतम न्यायालय में भी दयोदय का यानी दया का उदय हो गया है" -उक्त उद्गार दिगम्बराचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने बीना बारहा देवरी सागर, म. प्र. वर्षायोग निष्ठापन महोत्सव के दौरान व्यक्त किये।

विगत दिनों सुप्रीमकोर्ट की सात सदस्यीय पीठ ने 6:1 के बहुमत से सम्पूर्ण गोवंशवध के प्रतिबंध को न्याय-सम्मत ठहराए जाने वाले 135 पृष्ठीय निर्णय की एक प्रति आचार्यप्रवर को सौंपे जाने पर आपने कहा कि अहिंसा हम सबका एक देवता है। उसकी पूजा-आराधना करना हम सभी का कर्तव्य है। धन या पैसा की आराधना नहीं, अपितु गुणों की उपासना करना, अहिंसाधर्म का पालन करना ही सभी का परम कर्तव्य है। अहिंसा की आराधना करनेवाले सुप्रीम कोर्ट के मुख्य जजों के द्वारा यह निर्णय हुआ है। सुना है वे अवकाश प्राप्त कर रहे हैं। हम तो यह चाहते हैं कि उन्हें संसार से शीघ्र ही अनंतकालीन अवकाश (मोक्ष) प्राप्त हो जाये। **इतिहास में यह निर्णय सदा याद रखा जायेगा। इससे फलित हुआ कि न्यायालयों में भी अहिंसा के प्रति भक्ति-भाव आज भी विद्यमान है।**

आपने कहा कि **पशु भी इस निर्णय के पश्चात् सोच रहे होंगे कि हमें भी अब जीवन जीने की स्वतंत्रता मिल गयी है।** अब उन बूढे अशक्त जानवरों की अनुपयोगिता के स्थान पर सही उपयोगिता सिद्ध करने और उसका क्रियान्वयन करने / कराने की आवश्यकता है। कोई भले ही इन पशुओं को वध के योग्य कहे या माने पर सभी को इनके संरक्षण का कार्य करके दिखाना है। पहले राजा सब को बाध्य कर सकता था, किन्तु आज यह प्रजासत्तात्मक देश है, अतः किसी को बाध्य नहीं किया जा सकता। इसलिये प्रत्येक देशवासी का कर्तव्य है कि वह इन मूक जानवरों का भी संरक्षण करे। इसके बिना इनका संरक्षण का कार्य नहीं होगा।

आचार्य विद्यासागर जी ने अपने दीक्षा एवं शिक्षा गुरु जैनाचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज का स्मरण करते हुये कहा कि महाराज जी ने (पं.भूरामल शास्त्री की अवस्था में) रत्नकरण्डक श्रावकाचार का अर्थ 'मानव-धर्म' के नाम से किया है। वैसे ही उनकी एक अन्य मौलिक कृति 'पवित्र मानव जीवन' भी है। उसमें उन्होंने एक पद्य में लिखा है कि पहले किसान या वणिक के आंगन में **गौ यानी गाय का रव (स्वर)** उठता था। इसके कारण मालिक **गौरव** का अनुभव करता था। उन्हें जो उस समय महसूस हुआ उसे उन्होंने कविता में लिखा था, किन्तु खेद की बात यह है कि आज उसका वध किया जा रहा है। उस मूक पशुधन का कटना इस युग के लिये अभिशाप है। भले ही कविजन अपने भावों को कविता में कुछ अन्य प्रकार से ही लिखते हों, **किन्तु महाराज जी ने तो उस गौ के रव करने को तब गौरव का चिह्न माना था। वे जहाँ भी होंगे यह खबर सुनकर अवश्य ही खुश होंगे।**

आचार्यश्री ने यह भी कहा कि लोग कहा करते थे कि महाराज 'मांसनिर्यात' का विरोध करने हेतु आप दिल्ली चलो। वह देश की राजधानी है। हम तो यही कहते थे कि हमारी आवाज / भावना को ही यहाँ से वहाँ तक पहुँचा दो। भावों का विस्तार सर्वत्र हो जाता है। अतः सिद्धान्त को जाननेवाली सुप्रीमकोट/ सरकार/ संसद तक हमारी भावना को पहुँचा दो।

आचार्यश्री ने अपने गुजरात-प्रवास को स्मरण करते हुए कहा कि सिद्धक्षेत्र गिरनार (जूनागढ़) में नेमीनाथ भगवान् के चरणों में भावना भायी थी कि पशुओं को बाड़े में वध हेतु बंद देखकर आपने शादी नहीं की थी। जूनागढ़ से आप रथ को छोड़कर गिरनार जी की ओर चल दिये थे। पशुओं को बंधन में बँधे हुए देखकर, उन्हें स्वतंत्रता दिलाने के लिये, चूँकि आप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोक्षगामी जीव थे, अत: मोक्ष के तोरणद्वार की ओर अपने कदम बढ़ाये थे। इससे बड़ा मुमुक्षु कौन होगा? संसार तो बुभुक्षु है, पर आप सही मुमुक्षु हैं। अत: आप की इस जीव-दया, करुणा, परोपकार से अन्य लोग भी शिक्षा ले सकें। गुजरात प्रांत के उस प्रवास में सौराष्ट्र के गाँव-गाँव में गाय-बैल आदि को देखकर लगता था मानों ये बड़े-बड़े हाथी जैसे ही जीव हैं। बड़ी-बड़ी कायावाला बैल मुड़कर यदि देख रहा हो, तो लगता था कि मानों हाथी ही हो। वहाँ लोगों ने बताया कि ऐसे जानवरों को भी वध हेतु कत्लखाने ले जाया जाता है।

आपने कत्लखानों का उल्लेख करते हुए कहा पहले कृषि-कार्य बैलों द्वारा किया जाता था, किन्तु आज के युग को यान्त्रिक युग कहा जाता है। बैलों के द्वारा कृषि करना प्राय: छूटता जा रहा है, इसीलिये इन्हें कत्लखाने ले जाया जाता है। यह देख-सुनकर खेद-खिन्नता होती है। पहले राजाज्ञा से ऐसे कार्यों को रोका जा सकता था, किन्तु आज लोकतंत्र है। इन जीवों का भी कुछ पुण्य है। **आप लोगों के संकल्प से अहिंसा की यह आराधना सफल हो सकी है।**

इसी प्रसंग में सुप्रीमकोर्ट में याचिका दाखिल करनेवाले ब्रह्मचारी जी (ए.के. जैन) का उल्लेख करते हुए आचार्य प्रवर ने कहा कि ब्रह्मचारी जी ने कहाँ-कहाँ पर क्या-क्या कार्य किया है, यह वो जानते हैं या भगवान् जानते हैं, पर अपने ध्रुव की प्राप्ति हेतु ये अंत तक डटे रहे। इस कार्य के लिये ये बहुत उत्साहित रहे हैं। इन्होंने दस-दस उपवास की साधना भी की है। भले ही उन उपवास के दिनों में ये स्नान कर लेते थे पर इन जीवों के संरक्षण हेतु बाहर जाने की आवश्यकता महसूस होने पर चार उपवास होने पर भी गए हैं। इन्हें भले ही ड्राईफ्रूट्स, चना, मूंगफली खाने मिले पर इस कार्य को ये करते रहे। आप लोगों जैसे होटलों में तो खाते नहीं हैं। भले ही इनके बाल ज्यादा बढ़ जाते हैं, पर केशलोंच ही करने का प्रयास करते हैं। तब देखने में ये बाबाजी जैसे लगने लगते हैं। ये कइ बार गिरे, पैर टूट गया, फिर भी लँगडाते हुए आते-जाते रहे, किन्तु अहिंसा के प्रति ऐसे ही अडिग रूप से डटे रहे।

इसी प्रसंग को 'पिच्छिका परिवर्तन दिवस-अहिंसा संयमोपकरण दिवस' पर आचार्य श्री ने पुन: कहा कि प्राणियों की रक्षा के लिये सभी लोग वर्षों से प्रयासरत थे कि यह जीवदया का कार्य सार्थक हो जाये और अहिंसा-धर्म का सम्यक् प्रचार हो सके। इस प्रकार इस कार्य के लिये लाखों की संख्या में जनता की लगन एवं भावना थी। **सर्वोच्च न्यायालय में 7 जजों की बैंच में 6 जजों ने अब मुक्तकंठ से यह घोषणा कर दी है कि बूढ़े बैल आदि वध के योग्य नहीं हैं। भारत के लिये यह गौरव की बात है। इसे अंतर्राष्ट्रीय गौरव की बात भी कह सकते हैं। दया, करुणा, अहिंसा का सही लक्षण क्या है-यह उन्हें भी ज्ञात था, तभी तो उन्होंने ऐसा निर्णय घोषित किया है, जो विश्व भर में ज्ञात हो गया कि ऐसा भी निर्णय हो सकता है।**

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के सम्बन्ध में आपने कहा कि **सर्वोच्च न्यायालय में जिनने ऐसा निर्णय घोषित किया है, उनमें से किसी के परिजन के बारे में सुना है कि वे मांसाहारी नहीं हैं, बल्कि विशुद्ध शाकाहारी हैं। इतना ही नहीं, वे अपने आहार में प्याज, लहसुन तक को छूते नहीं हैं। अत: ऐसे व्यक्ति दया, अहिंसा के समर्थक क्यों नहीं बनते ?** आप लोगों के तन, मन एवं धन से ऐसे सात्त्विक कार्य हों, तो उसका प्रभाव निश्चित रूप से हिंसकवृत्तिवालों पर भी पड़ता/पड़ सकता है। सामूहिक कार्यों में, पूजा पद्धतियों में सात्त्विकता का होना आवश्यक है। बहुत से लोग देश में ऐसे भी हैं जो मांसाहारी भले हैं, पर व्यापार की दृष्टि से गोवंश का वध नहीं चाहते हैं। बहुत से मुसलमान भाई भी हमारे पास आये थे। उनमें से कोई कर्मठ सामाजिक कार्यकर्ता था। उन्होंने भी कहा था कि यह वध किया जाना ठीक नहीं है। और भी अनेक मुसलमानों के लेख हमने पढ़े है। राजस्थान में गोवंश का संरक्षण मुसलमान भी करते हैं। वहाँ आज भी ऊँटों तथा गोवंश आदि का संरक्षण कई मुसलमान करते हैं। उनकी आजीविका दूध उत्पादन के ऊपर ही निर्भर है।

आपने कहा कि बुंदेलखण्ड में आप लोगों ने पचासों स्थान पर 'दयोदय' नाम से गोशालाएँ खोली हैं। भले ही उनमें ज्यादा जीवों की रक्षा नहीं हो पा रही है, फिर भी जीव-रक्षण का कार्य तो हो रहा है। इसी कारण से लोगों में प्राणियों के हित के लिये विचार, चिंतन किया जा रहा है। आप लोगों ने जो सद्भावना रखी, यह उसी का सुपरिणाम है । एक स्थान पर आर्यिकासंघ का प्रवास था। वहाँ के लोगों ने गोशाला खोलने की भावना रखी। तब उन्हीं में से एक व्यक्ति न उठकर कहा कि सब जन मिलकर यह कार्य करें तो श्रेष्ठ ही है, नहीं तो हम अकेले ही अपने द्रव्य के सदुपयोग के लिये चार-पाँच सौ प्राणियों का संरक्षण करेंगे। ऐसी ही भावनाओं का फल है कि बेगमगंज, सिलवानी, गंजबासौदा आदि में दयोदय गोशालाएँ खुली हैं। और यही उस जनजागृति का परिणाम है कि लोग इस प्राणीसंरक्षण के कार्य हेतु दान देकर अपने कर्तव्य का पालन कर रहे हैं। वस्तुत: इस दान राशि से इन जीवों का संरक्षण ही अकेले नहीं हो रहा है अपितु आपका भी संरक्षण हो जाता है।

☐



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि नं. UP/HIN/34497/24/1/2005-TC

जनवरी-फरवरी 2006

मासिक
# जिनभाषित

वर्ष 5, अङ्क 12-13
संयुक्तांक

**सम्पादक**
प्रो. रतनचन्द्र जैन

◆

**कार्यालय**
ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

◆

**सहयोगी सम्पादक**
पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया,
(मदनगंज किशनगढ़)
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

◆

**शिरोमणि संरक्षक**
श्री रतनलाल कंवरलाल पाटनी
(आर.के. मार्बल)
किशनगढ़ (राज.)

श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

◆

**प्रकाशक**
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428,2852278

◆

**सदस्यता शुल्क**

| | |
|---|---|
| शिरोमणि संरक्षक | 5,00,000 रु. |
| परम संरक्षक | 51,000 रु. |
| संरक्षक | 5,000 रु. |
| आजीवन | 500 रु. |
| वार्षिक | 100 रु. |
| एक प्रति | 10 रु. |

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

## अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

- **सम्पादकीय** : कुण्डलपुर के बड़े बाबा का अतिशय — 3
- **प्रवचन**
  - ◆ उच्चतम न्यायालय में दयोदय का उदय हुआ : आचार्य श्री विद्यासागर जी — आ. पृ. 2
- **लेख**
  - ◆ कुण्डलपुर में बड़े बाबा पूर्णतः सुरक्षित : ब्र. अमरचंद जैन — 5
  - ◆ गोम्मटेश्वर बाहुबली की मूर्ति का मौन सन्देश : डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती' — 7
  - ◆ गोम्मटेश्वर बाहुबली और गोमटेसथुदि : एक अनुशीलन : डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' — 10
  - ◆ शासनदेवपूजा-रहस्य : श्री रतनलाल जी कटारिया — 13
  - ◆ संस्कारोन्नयन में विद्वानों का योगदान : डॉ. श्रेयांसकुमार जैन — 18
  - ◆ भगवती-आराधना में स्त्रियों के लिए भक्तप्रत्याख्यानकाल में नाग्न्यलिङ्ग का विधान नहीं : प्रो. (डॉ.) रतनचन्द्र जैन — 21
  - ◆ जैन पाठशाला : आवश्यकता और शिक्षण पद्धति : डॉ. प्रेमचंद जैन — 26
  - ◆ श्रमण संस्कृति के उन्नायक पं. कैलाशचन्द्र जी शास्त्री एवं स्याद्वाद महाविद्यालय : डॉ. श्रीमती रमा जैन — 30
  - ◆ जन्मशताब्दी वर्ष पर पावन स्मरण : पं. वंशीधर व्याकरणाचार्य : डॉ. ज्योति जैन — 31
  - ◆ साधुओं को अवश्य दें आहारदान, किन्तु रहें सावधान : पं. राजकुमार जैन शास्त्री — 33
  - ◆ दूध अमृत है या विष? शाकाहार है या मांसाहार? : संजय पाटनी — 36
  - ◆ दूध मांसाहार नहीं है : जयकुमार जैन 'जलज' — 37
  - ◆ अहिंसक चूल्हे : डॉ. जीवराज जैन — 38
  - ◆ अतिशय क्षेत्र नंदुरबार का परिचय : सरिता महेन्द्र झांझरी — 40
- **जिज्ञासा-समाधान** : पं. रतनलाल बैनाड़ा — 43
- **समाचार** — 46-48, आवरण पृ.3

**लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।**
**जिनभाषित से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

# कुंडलपुर के बड़े बाबा का अतिशय

गत ८-१० वर्ष पूर्व से कुंडलपुर के बड़े बाबा के वर्तमान मंदिर की जीर्ण-शीर्णता एवं अन्य न्यूनताओं के बारे में क्षेत्र कमेटी निरंतर चिंतित रही आई थी। मंदिर ऐसी जीर्ण दशा में पहुँच गया था कि उसके कारण बड़े बाबा की प्राचीन प्रतिमा को खतरा उत्पन्न हो गया था। मंदिर के जीर्णोद्धार की अनेक योजनाएँ बनीं, किन्तु विशेषज्ञों की यही राय रही कि मंदिर की दीवारों में ऐसी दरारें हो चली हैं जिनकी मरम्मत किया जाना संभव नहीं है। समय-समय पर भूकम्पों के झटके सहते हुए मंदिर जर्जर अवस्था में पहुँच गया था, जिसके कारण मूर्ति के लिए भी असुरक्षा का संकट उत्पन्न होने की पूरी-पूरी आशंका आ खड़ी हो गई थी। क्षेत्र कमेटी को जब मंदिर की मरम्मत किया जाना और उसके द्वारा उस अमूल्य धरोहर प्राचीन मूर्ति की सुरक्षा किया जाना संभव नहीं प्रतीत हुआ, तो वैकल्पिक उपायों के बारे में विचार किया जाना प्रारंभ किया गया। इस बीच भूकंप विशेषज्ञों के द्वारा क्षेत्र का गहन निरीक्षण कराया गया। उन्होंने बताया कि बड़े बाबा के मंदिर के आसपास का पहाड़ीक्षेत्र भूकंप प्रभावित क्षेत्र है। अत: मूर्ति की प्रभावी सुरक्षा के लिए भूकंपनिरोधी तकनीक के आधार पर नए मंदिर का निर्माण किया जाना ही एकमात्र उपाय है। क्षेत्र कमेटी ने वर्तमान मंदिर में स्थानाभाव के कारण दर्शनार्थियों को बड़े बाबा के भली प्रकार दर्शन-पूजन करने में प्रतिदिन अनुभव की जा रही कठिनाइयों पर भी विचार किया और नवीन विशाल एवं सुदृढ़ भूकंपनिरोधी बड़े बाबा के बड़े मंदिर के निर्माण की योजना लेकर बड़े बाबा के प्रतिनिधि छोटे बाबा प. पू. आचार्य विद्यासागर महाराज के चरणों में योजना के क्रियान्वयन हेतु आशीर्वाद प्राप्त करने उपस्थित हुए। पू. आचार्य श्री के मन में तो पहले से ही बड़े बाबा की मूर्ति की सुरक्षा की चिंता बसी हुई थी। हर बार बड़े बाबा के दर्शन करते समय उन्हें सुरक्षा योजना के संकेत मिलते रहते थे। छोटे बाबा आचार्य श्री को कमेटी की योजना अच्छी लगी और जब उन्होंने क्षेत्र कमेटी को भव्य नवीन मंदिर के निर्माण के लिए आशीर्वाद दिया, तो कमेटी को ऐसी अनुभूति हुई मानो उन्हें यह आशीर्वाद साक्षात् बड़े बाबा के द्वारा छोटे बाबा के माध्यम से प्राप्त हो रहा है।

क्षेत्र कमेटी बड़े बाबा की मूर्ति की भव्यता के अनुरूप भव्य विशाल मंदिर के निर्माण में पूर्ण शक्ति के साथ जुट गयी। मंदिर-निर्माण-कला के विशेषज्ञ सोमपुरा-बंधु के निर्देशन में कार्य प्रारंभ किया गया। पहले पहाड़ी की भूमि को समतल कर भूकंपनिरोध हेतु पूरी भूमि पर कम्प्रेसर से गहरे होल कर सीमेंट ग्राउटिंग किया गया। प्रस्तावित मंदिर का मानचित्र एवं मॉडल देखकर दर्शकों का हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। संपूर्ण मंदिर कलात्मक उत्कीर्णन सहित बंशी पहाड़ के मनोहर पत्थर से निर्मित किया जा रहा है। आशा की जाती है कि बड़े बाबा की विशाल प्रतिमा उक्त प्रस्तावित भव्य मंदिर में विराजित होकर सहस्राधिक वर्षों तक भव्य जीवों को अपनी वीतराग मुद्रा के सम्यक्त्वोत्पादक दर्शन देती रहेगी।

इधर विशुद्ध भावनाओं एवं प.पू. आचार्य श्री के मंगल आशीर्वाद के साथ क्षेत्र कमेटी द्वारा नवीन मंदिर के निर्माण का कार्य प्रगति कर रहा था और उधर कतिपय पूर्वाग्रहों से ग्रसित जैन बंधुओं को यह सब नहीं सुहा रहा था। बड़े बाबा की असुरक्षित मूर्ति की सुरक्षा के लिए श्रद्धा और सद्भावना से प्रेरित हो किए जा रहे ये विकास कार्य उन बंधुओं के विद्वेषरंजित चश्मा लगे नेत्रों से विध्वंस कार्य दिखाई दे रहे थे। उन्हें नवीन मंदिर के निर्माण में संलग्न श्रद्धालु श्रावक अपने दृष्टिदोष के कारण विधर्मी आतंकवादी दिखाई देने लगे। जब उन्होंने इस नवीन मंदिरनिर्माण के पावन कार्य में संपूर्ण देश के दिगम्बरजैन समाज की श्रद्धा आस्था जुड़ी हुई देखी, तो वे पीछे के दरवाजे से इस पावन कार्य में बाधा डालने के लिए अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ जुट गए। जैसे-जैसे नवीन मंदिर का निर्माण उस स्तर के निकट पहुँचने लगा, जब वहाँ मूर्ति विराजित की जानी थी, वैसे-वैसे विघ्न-संतोषी बंधुओं की गतिविधियाँ तेज होने लगीं। उन्होंने क्षेत्र कमेटी को न्यायालय में केस दायर करने की धमकियाँ दी। साथ ही उन्होंने केन्द्रीय पुरातत्व विभाग एवं राज्य सरकार पर मंदिर के निर्माण कार्य को रुकवाने और मूर्ति के नवीन मंदिर में स्थानांतरण को रोकने के लिए पुरजोर दबाव डाला। पुरातत्व विभाग पर जोर देकर मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय में कमेटी के विरुद्ध याचिका प्रस्तुत कराई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने आपको जैन कहलानेवाले उन भाइयों के द्वारा बार-बार शिकायतें करने एवं राजनैतिक दबाव बनाने के कारण राज्य सरकार ने भारी पुलिस बल सहित जिलाधीश को क्षेत्र पर निर्माणकार्य एवं मूर्ति का स्थानांतरण रोक देने के लिए भेजा। जिन दिनों में बड़े बाबा की मूर्ति का स्थानांतरण प्रस्तावित था, उन्हीं दिनों में क्षेत्र पर लगभग ८०० की संख्या में पुलिस फोर्स तैनात करवा दी गई, किन्तु पू. आचार्यसंघ, ब्रह्मचारीगण, ब्रह्मचारिणी बहिनों एवं श्रद्धालु श्रावकों के अहिंसाबल से हिंसा पर आधारित पुलिस बल हार गया। संपूर्ण कुंडलपुर की पहाड़ी पर धर्म श्रद्धालु जमा थे। बड़े बाबा के मंदिर पर जाने के सभी मार्गों पर ब्रह्मचारी भैयाओं एवं ब्रह्मचारिणी बहिनों के समूहों ने पुलिस को उधर जाने से लगातार तीन दिन तक रोके रखा। तीन दिन तक भोजन-पानी की चिंता किए बिना सभी मंत्र का जाप करते हुए अपने स्थान पर डटे रहे। पुलिस उन अहिंसक वृत्तियों पर शस्त्रबल का प्रयोग करने का साहस नहीं जुटा सकी। तीन दिनों में उन तथाकथित जैन बंधुओं की कृपा से कुंडलपुर दि. जैन तीर्थ क्षेत्र को पुलिस छावनी का रूप प्राप्त हो गया। किन्तु धर्म की सदा विजय होती है और बड़े बाबा की वह सातिशय मूर्ति दर्शनार्थी भव्य जीवों के पुण्योदय से दिनांक १७ जनवरी के शुभ दिन नवनिर्मित मंदिर के गर्भगृह में सुरक्षित आकर विराजमान हो गई। शंकालु व्यक्तियों के मन में बड़े बाबा की मूर्ति के स्थानांतरण के प्रकरण को लेकर अनेक प्रकार की आशंकाएँ उत्पन्न हो रही थीं। किन्तु जिस सुंदरता और सहजता से बड़े बाबा नवीन मंदिर में आकर विराजमान हुए, उससे मुझको तो यह लगता है कि स्वयं बड़े बाबा दर्शनार्थियों की प्रार्थना सुनकर उस जर्जर छोटे स्थान से उठकर इस विशाल नवीन मंदिर में आना चाहते थे। छोटे बाबा आचार्यश्री को अवश्य ही बड़े बाबा की ओर से ऐसा संकेत भावनात्मक रूप में प्राप्त हुआ होगा, तभी केवल एक आचार्यश्री ही बड़े बाबा की मूर्ति के नवीन मंदिर में निर्विघ्न स्थानांतरण के विषय में सर्वाधिक पूर्णत: आश्वस्त थे। इस संबंध में पू. आचार्य श्री के नि:शंक विश्वास का आधार बड़े बाबा रहे और हम सब श्रद्धालुजन के विश्वास का आधार पू. आचार्यश्री रहे। **मैं तो कहूँगा कि बड़े बाबा की मूर्ति का यह सहज और निर्विघ्न स्थानांतरण इस शताब्दी की सर्वाधिक अतिशयकारी घटना है, जो इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर 'कुंडलपुर के बड़े बाबा का अतिशय' के रूप में अंकित रहेगी।**

बड़े बाबा की मूर्ति को उस जर्जर अपर्याप्त स्थान से बाहर विशाल मंदिर के गर्भगृह में लानेवाले लोग तो निमित्त मात्र रहे, वस्तुत: तो बड़े बाबा को बड़े खुले स्थान पर देखने के लिए तरसती हुई श्रद्धालु जन-जन की भावनाएँ एवं उन भावनाओं को सही रूप में पढ़कर द्रवित हुए आचार्य श्री की आत्मशक्ति ही मूर्ति को नवीन मंदिर में ला पायी।

बड़े बाबा के नवीन मंदिर में विराजमान होने के बाद लघु पंच-कल्याणक-प्रतिष्ठा, योग-मंडल-विधान आदि की क्रियाएँ संपन्न होने के बाद मूर्ति के इतिहास में प्रथम बार दिनांक १९ जनवरी को ऐसा महा मस्तकाभिषेक हुआ जिसको हजारों-हजार श्रद्धालु एक साथ देखकर भावविभोर हुए और अपने जीवन को धन्य माना।

पुरातत्त्व के संरक्षण की दुहाई देते हुए जो लोग उस प्राचीन जर्जर स्थान से बड़े बाबा की मूर्ति को स्थानांतरित नहीं किए जाने के पक्षधर हैं, मैं उनसे कहना चाहता हूँ कि संपूर्ण कुंडलपुर क्षेत्र में सर्वाधिक मूल्यवान पुरातात्त्विक संपत्ति तो बड़े बाबा की मूर्ति है। क्या इस सारभूत पुरातत्त्व की असुरक्षा के खतरे के मूल्य पर हमें भूकंपों के झटकों से जर्जर हुए उस अंधेरे छोटे स्थान वाले मंदिर को सुरक्षित रखने की मूढ़ता भरी भूल करना चाहिए? वस्तुत: आगे आने वाले सहस्राधिक वर्षों के लिए बड़े बाबा की मूर्ति की उस मूल्यवान् पुरातात्त्विक संपत्ति को संरक्षित कर हमने सच्चे अर्थ में पुरातत्त्व का संरक्षण किया है। साथ ही लाखों-लाख श्रद्धालु जैन बंधुओं को बड़े बाबा की सातिशय मूर्ति का सुविधापूर्वक दर्शन-पूजन करने का अवसर प्रदान किया है।

मैं बड़े बाबा की मूर्ति के स्थानांतरण का विरोध करने वाले बंधुओं से आग्रहपूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि वे एक बार कुंडलपुर आकर इस नवीन मंदिर में विराजे बड़े बाबा के दर्शन अवश्य करें। मैंने अनुभव किया और जो कोई भी बड़े बाबा के दर्शन करेगा वह अनुभव करेगा कि इस नवीन मंदिर के गर्भगृह की वेदी पर विराजित होने पर बड़े बाबा की सुंदरता, वीतरागता, सौम्यता और आकर्षण में मानो सहस्रगुनी वृद्धि हो गई है और उनके अतिशय में भी अवश्य उतनी ही वृद्धि हुई होगी।

**मूलचन्द लुहाड़िया**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# कुण्डलपुर में बड़े बाबा पूर्णतः सुरक्षित

**ब्र. अमरचंद जैन**

इधर कुछ दिनों से कुण्डलपुर के बड़े बाबा के संबंध में कुछ पत्र-पत्रिकाओं में भ्रामक समाचार लिखे जा रहे हैं। जैन समाज एवं भारतीय जनता को मैं यह संदेश देना चाहता हूँ कि यहाँ क्या हुआ, क्यों हुआ और अब क्या स्थिति है? हमारी आस्था के ये तीर्थ किसकी सुरक्षा में हजारों वर्षों से पूजित रहे हैं? संक्षेप में, निकट इतिहास से ही पहिले शुरू करें जो तथ्य सरकारी गजटों में भी प्रकाशित हैं।

सन् १७०० में नेमिचंद्र ब्रह्मचारी ने जैन समाज के श्रावकों से दान लेकर बड़े बाबा के ध्वस्त मंदिर का पुनः निर्माण कराया था। अतः एक बात सिद्ध है कि सन् १७०० के पहिले पर्वत पर स्थित बड़े बाबा का मंदिर था, जो समय की मार से भूकंप आदि से ध्वस्त हो गया था तथा टीले के रूप में पहाड़ के जंगल के बीच ना मालूम कितने समय से ध्वस्त अवस्था में अवस्थित था। कुण्डलपुर गाँव का नाम उस समय "मंदिर टीला" ग्राम था।

इस जीर्णोद्धार, पुनः निर्माण के १५० वर्ष बाद यानी १८६१ (सन्) में पुरातत्त्व विभाग भारत में अंग्रेजी राज्य के दौरान स्थापित किया गया। इसके पहले यहाँ स्थानीय भारतीय राजाओं का शासन था, जिन्होंने मुगलों से संघर्ष करके अपना अस्तित्व बनाये रखा था। इसी कड़ी में कुण्डलपुर के बड़े बाबा के अतिशय की बातें जानकर महाराजा छत्रसाल ने भी बड़े बाबा के मंदिर को पुनः जीवन दिया-मरम्मत कराई तथा तहलटी में वर्द्धमानसागर नामक तालाब का निर्माण-मरम्मत कराई। तीन सौ वर्ष पहिले की इतिहाससिद्ध यह उपर्युक्त घटना है।

दिगम्बर जैन समाज के ये ऐसे मंदिर समाज की सुरक्षा में हजारों वर्षों से पूजित रहे हैं और हैं, भारत के ब्रिटिश शासन के बहुत समय-प्राचीन काल से। आज के पुरातत्त्व विभाग के संगठन के पहिले से ही ये मंदिर जैन समाज की सुरक्षा में अब तक रह कर आस्था के केन्द्र थे, और रहेंगे भी, कितने ही शासनकाल इन मंदिरों और मूर्तियों ने देखे हैं और जैन समाज ने उनकी पूज्यता को अक्षुण्ण बनाये रखा है। विगत १५० वर्षों में ब्रिटिश शासन तथा भारतीय जनता का शासन रहा है। अंग्रेजी राज्य के दौरान जो कानून, जिस तरह बने थे (गुलामों की तरह) हम उसी का परिपालन कर रहे हैं। उन विदेशियों के कानूनों को भारतीयदर्शन के परिवेश एवं आस्था के अनुसार, उस पद्धति के अनुसार परिवर्तन नहीं किया था। यही काम पुरातत्त्व विभाग का गठन करके उसी पुरानी (जो बगैर किसी आस्था के बनाये गये थे) कानून व्यवस्था को पीट रहे हैं। वे हमारे भारतीय दर्शन से भिन्न हैं, जिन्हें हम पर लादा गया हमारी आस्था पर अतिक्रमण किया गया तथा हमें मानने पर मजबूर किया गया- कथित सुरक्षा एवं रख-रखाव एवं प्राचीन धरोहर को अवस्थित करने के नाम पर।

हमें अपने मंदिरों की सुरक्षा एवं पूजा-आस्था का मौलिक अधिकार सदा ही रहा है-है-और रहेगा। इसे कोई शासन छीन नहीं सकता। इतिहास के पन्नों को आप पलटें-मुगलों ने कैसे, क्या-क्या अपराध इन मंदिरों एवं मूर्तियों पर नहीं किये? देशी राजाओं ने सुरक्षा एवं पूज्यता को कायम रखने का प्रयास किया, अंग्रेजी शासन ने इसे कानून का जामा पहिनाया पर स्वदेशी राज को अभी अर्द्ध शताब्दी ही हुआ है-इन कानूनों को भारतीय दर्शन के अनूरूप नहीं ढाला। यह सब हमारी आस्था श्रद्धा पूज्यता को नही बदल सकता। आज स्वराज होने पर तथा जैन समुदाय के अल्पसंख्यक होने से शासन पर हमारी प्राचीन-ऐतिहासिक मान्यता को सुरक्षित/अक्षुण्ण रखने का दायित्व है। लोगों का नजरिया अलग-अलग है, जो सुरक्षा को विनाश की संज्ञा दे रहे हैं। पुरातत्त्व का सीधा अर्थ है पुरा=पुराना तथा तत्व=सार।

मंदिरों की संरचना देवता के वैभव-उनकी महानता के अनुरूप बनाने की प्रथा/आस्था सदा से रही है, ताकि स्थायित्व भी प्राप्त हो। अतः मंदिर, देवता के विराजने का स्थान होने से पूज्य है, अन्यथा उस इमारत को कौन पूजेगा जहाँ देवता ही नहीं हो। ऐसे अनेकानेक उदाहरण हमारे सामने हैं, जहाँ अच्छे कलात्मक मंदिर हैं तथा जो देवता से शून्य हैं, क्या वे पूजित स्थान हैं, या हमारी आस्था के केन्द्र हैं? वे केवल कला के कारण प्रसिद्ध हैं, पूज्य नहीं। वहीं ऐसे प्रसिद्ध एवं जगतपूज्य स्थान/मंदिर हैं, जो मात्र शरणस्थल हैं देवता के, पर आस्था के, पूज्यता के परम केन्द्र हैं।

संरक्षण की गुहार लगाकर हमारे ही भाइयों ने "बड़े बाबा" के मंदिर-स्थान के संबंध में शासन को उकसाया है और वे सुरक्षा एवं स्थायित्व प्रदान करनेवालों को बने कानूनों के तहत दोषी ठहराने के प्रयास में भी हैं।

"घर में आग लग गई घर के चिराग से" इन शब्दों के अनुसार विरोध करने वाले हमारे भाइयों ने यह देखा है कि क्या, कैसे और क्यों हो रहा है? शासन भी विगत दस वर्षों से यहाँ के विकास कार्यों को देख रहा है और अब जब "बड़े



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाबा'' जो असुरक्षित गर्भगृह के ढाँचे मात्र में अवस्थित थे, उन्हें उनकी भव्यता एवं आकार के अनुरूप जब सुरक्षित सुदृढ़ मंदिर में विराजने का सुप्रयास किया गया तो हमारे ही भाई जो उन्ही भगवान को पूजते हैं, आज कानून की, शासन की आड़ में आकर इस पुण्यशाली कल्याणकारी कार्य में बाधा डालने खडे हो गये हैं। यह कैसी मान्यता/धारणा/कार्यकलाप है? क्या यही, उनकी जिनेन्द्र भगवान् के प्रति आस्था का प्रतीक है? वस्तुत: यह कषायों का खेल है, नेतागिरी एवं अपयश लूटने का उपक्रम है। पुरातत्त्व विभाग अच्छी तरह जानता है कि पूजित स्थान-संस्थान धार्मिक आस्था के केन्द्र हैं, उनमें कोई छेड़छाड़ नहीं कर सकता और न अभी तक किया है। सुरक्षा के नाम पर स्थायित्व के तहत आज तक यहाँ पर पुरातत्त्व विभाग ने क्या रचनात्मक कार्य किये? हमारे कथित जैन भाइयों ने क्या सृजनात्मक योग दिया इन बड़े बाबा को सुरक्षित एवं स्थायित्व प्रदान करने में, मात्र आलोचना के? क्या वे चाहते थे, कि बड़े बाबा इस अस्थिर-कमजोर ढाँचे में ही रहे आयें और किसी अनहोनी घटना भूकंप आदि से ध्वस्त हो जायें? हम सब यह क्या खडे-खडे देखना चाह रहे थे-यही आस्था बड़े बाबा के प्रति उनकी थी? मैं जानता हूँ कि कोई रचनात्मक सुझाव-स्कीम-चर्चा इस संबंध में, उन्होंने कभी नहीं की जिनके ये कषाय उपजी है।

अत: जर्जर हुये मंदिर के ढाँचे में विराजमान ''बड़े बाबा'' को सुरक्षित एवं स्थायित्व देना हमारा कर्तव्य था। हम इतिहास में, वर्तमान में तथा भविष्य में भी इन्हें आस्था पूर्वक पूजते हैं, पूज रहे हैं और पूजते रहेंगे। आज आध्यात्मिक-शक्ति एवं भक्तों के द्वारा भक्तिपूर्वक मंत्रों की शक्ति द्वारा ''बड़े बाबा'' को नूतन बड़े मंदिर में स्थापित किया है, ताकि सैकड़ों सालों तक करोड़ों भक्त अपने देवता के पूजन-भक्ति-दर्शन का लाभ ले सकें। यह अनुकरणीय विकास कार्य पुण्यबंध का कारण है, न कि आस्था को डिगानेवाला। अत: यह दुष्प्रचाररूप कृत्य किसी दृष्टि से उचित नहीं, बल्कि निंदनीय है-समाज इसका फैसला करे।

अब जब ''बड़े बाबा'' पूर्ण सुरक्षित रीति से नये बडे मंदिर में विराजमान हैं, उसके निर्माण में पूर्व की तरह भारत वर्ष के समस्त जैन समाज से योगदान देने की अपील करता हूँ।

नोट : आज से पूर्व तक विरोधियों की लिखी आशंकाओं एवं कुशंकाओं को अब विराम दे देना चाहिये, क्योंकि बड़े बाबा आज विस्तृत, सुदृढ मंदिर के गर्भगृह में पूर्ण सुरक्षित विराजमान हैं। आइये, और दर्शन कीजिये। देखिये ये चमत्कार बड़े बाबा की भव्यता का और पुण्य अर्जन कीजिये।

**श्री दि. जैन महावीर आश्रम, कुण्डलपुर**

# कुण्डलपुर में आयुर्वेदिक औषधालय का शिलान्यास

कुण्डलपुर (हटा) जैन तीर्थ कुण्डलपुर में आयुर्वेदिक औषधालय का शिलान्यास कार्यक्रम राष्ट्रसंत परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के मंगल सान्निध्य में विधिविधान पूर्वक सम्पन्न हुआ।

श्री दिगम्बर जैन पद यात्रा संघ जयपुर द्वारा सन् २००३ में जयपुर से सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर तक सम्पन्न ऐतिहासिक पदयात्रा के उपलक्ष्य में पुन: १८ दिस. २००५ को रेलगाड़ी स्पेशल द्वारा हजारों नरनारियों के साथ जयपुर से चलकर दमोह होते हुये कुण्डलपुर पहुँचे तीर्थयात्रियों की उपस्थिति में औषधालय के शिलान्यास का कार्यक्रम हुआ। बड़े बाबा के चित्र का अनावरण श्री गणेश जी राणा ने किया। आचार्य श्री के चित्र का अनावरण पदयात्रा संयोजक श्री सुभाष जी ने साथियों के साथ किया। २६ लाख की अनुमानित राशि से बनने जा रही आयुर्वेदिक औषधालय की प्रथम आरोग्य-वर्धिनी शिला बाबूलाल जी बाकलीवाल ने रखी। इस अवसर पर ५०१ रुपये वाले ५०१ सदस्य बनकर जयपुर यात्रीगणों ने औषधालय निर्माण की बात कही। श्री गणेश राणा, जयपुर ने एक लाख इक्यावन हजार रुपये, राजेन्द्र गोधा, जयपुर इक्यावन हजार रुपये, कुशल ठोलिया, जयपुर ने इक्यावन हजार रुपये राशि औषधालय निर्माण हेतु घोषणा की एवं साथ आये अनेक यात्रियों ने भी सामर्थ्यानुसार नगद राशि देकर औषधिदान के पुण्य का संचय किया।

जयकुमार 'जलज' हटा


Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# गोम्मटेश्वर बाहुबली की मूर्ति का मौन संदेश

कहने को तो यह एक मूर्ति है, सत्तावन फुट उत्तुंग (ऊँची) है, नग्न दिगम्बर मुद्राधारी है, एक ही पहाड़ी को तराशकर बनाई गई है, अत्यंत मनोज्ञ, मनोहारी एवं कलात्मक है। कलात्मक भी ऐसी-वैसी नहीं बल्कि बेजोड़/अनुपम। यदि आप एक बार देख लें तो देखते ही रह जाएँ, ठगे से/आत्मविमुग्ध। कभी लगता है कि बाहुबली ही इतने सुंदर थे, कभी लगता है कि मूर्तिकार कितना कुशल था, कभी लगता है मूर्ति निर्माता चामुण्डराय कितना महान् था! उत्तर अपने आप ही मिल जाता है बाहुबली तो महान् थे ही, तीर्थंकर पुत्र, कामदेव, तद्भवमोक्षगामी, 525 धनुष ऊँचा बलिष्ठ शरीर, उच्च विचार; सब कुछ तो था उनके पास। मूर्तिकार भी कम कुशल न रहा होगा, तभी तो वह, वह गढ़ सका जिसने उसे भी श्रद्धा का/प्रशंसा का पात्र बना दिया। अंग-अंग पर शोभित होती कलात्मकता बरबस आकृष्ट कर लेती है। लगता है पहले भरपूर देखूँ और देखते-देखते जब नजरें थकने लगती हैं और तृप्ति नहीं मिलती (मन चाहता है कि एकटक देखूँ, सौधर्म इन्द्र की तरह हजार नेत्रों से देखूँ) तो मन कहता है पहले प्रणाम तो कर लो! जीवन धन्य हो गया तुम्हारा जो प्रभु दर्शन का सौभाग्य मिला। मूर्ति निर्माता चामुण्डराय ने अपने नाम को सार्थक कर दिया, भावनाओं को साकार कर लिया और वह निधि पा ली; जिसे दान के सप्तक्षेत्रों में प्रथम स्थान दिया गया है-जिनबिम्बप्रतिष्ठा। युगों-युगों तक गाथा गाई जाएगी बाहुबली तुम्हारी, तुम्हारी इस मूर्ति की। नतमस्तक हैं हम तुम्हारे चरणों में।

एक सामान्य मूर्ति और भगवान् की मूर्ति में बहुत अंतर होता है। जहाँ सामान्य मूर्ति रागमय होती है, वहीं भगवान् की मूर्ति वैराग्यमय होती है। श्रवणबेलगोला स्थित भगवान् बाहुबली की मूर्ति वैराग्यमय ही है। यह दर्शक-भक्तों के चित्त में अपने प्रति अनुराग बढ़ाती है-**'गुणेष्वनुरागः भक्तिः'** ठीक ही तो कहा है। विशालता अहंकार का कारण बनती है; किन्तु इसमें विशालता है, अहंकार नहीं क्योंकि दृष्टि नासाग्र है। संसार है; रहे, जब तक संसार में रहना है; रहेंगे; किन्तु संसार में रचेंगे-पचेंगे नहीं; यही तो वैराग्य है। साँपों की बांबियाँ, लताएँ बता रही हैं कि आत्मध्यान में डूबा मानस इस बात की परवाह कब करता है कि शरीर कैसा है? शरीर पर किसका वास है? प्रकृति के जीव अपना काम कर रहे हैं और आत्मप्रकृति में लवलीन व्यक्ति उनसे बेखबर है; यही तो है सच्चा वैराग्य। साँप संसारी को काटते हैं, चाहे वे साँप (जीव) हों या कर्मरूपी साँप; किन्तु वैरागी की शरण पाकर तो अठखेलियाँ करते हैं, अपने आपको सुरक्षित और सनाथ पाते हैं। वीतराग प्रभु की शरण है ही ऐसी; तभी तो कहा है-

**अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम।**
**तस्मात्कारुण्यभावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर॥**

अर्थात् इस संसार में अन्य कोई शरण नहीं है, मेरे लिए तो आप ही शरण हैं; इसलिए हे जिनेश्वर! करुणाभाव से मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।

कहते हैं कि अग्नि का संपर्क पाकर हवा भी गर्म हो जाती है और बर्फ का संपर्क पाकर शीतलता को प्राप्त होती है। यह मूर्ति भी सहस्राधिक वर्षों से ध्यानमग्न अपने वीतराग भावों के साथ स्थिर रहकर दसों दिशाओं से बहकर आने वाली हवाओं को अपने स्पर्श से पावन बनाकर प्राणीमात्र को नवचेतना, नवस्फूर्ति एवं नव ऊर्जा प्रदान कर रही है। शांति, समता, सर्वोदय, वीतरागता, वैराग्य, विशालता का जो परिवेश (परिमण्डल) इस मूर्ति के माध्यम से विद्यमान है, वह अपने इन्हीं गुणों को प्रसारित करता हुआ प्रतीत होता है। ऐसा कौन है जो इस मूर्ति की दिव्य आभा से अपरिचित रह सके? इस मूर्ति के चमत्कारी स्वरूप की चर्चा सम्पूर्ण विश्व में होती है। पक्षी भी इस मूर्ति की पूज्यता से परिचित हैं इसीलिए वे गगन विहार करते समय भूलकर भी इस प्रतिमा पर वीट नहीं करते। कितने पुण्यशाली हैं वे पक्षी जो भगवान् बाहुबली के मस्तक को निकट से देख पाते हैं/ प्रणाम कर पाते हैं।

बाहुबली का स्पष्ट संदेश है- 'हम किसी से कम नहीं, हमसे कोई कम नहीं।' फिर भी निर्दोषता इतनी की अहंकार दूर-दूर तक नहीं। कहते हैं लघुता से प्रभुता मिलती है। वे तो वैराग्य में इतने लघु एवं विनम्र बन गये थे कि उनके मन में इस बात का पश्चात्ताप विद्यमान रहता था कि भरतेश्वर को मुझसे दुःख पहुँचा है। अतः जब भरत ने उनकी पूजा की तो वे पश्चात्ताप से मुक्त हो गये और उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया है। (महापुराण ३६/१८६)। बाहुबली ने पृथ्वी को 'पर' समझकर निर्माल्य की तरह त्याग दिया। वास्तव में



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृथ्वी सबको आश्रय देती है, किन्तु वह किसी की होती नहीं। बाहुबली की मूर्ति का यह स्पष्ट संदेश है कि- 'पृथ्वी काहू की ना भई।'

प्राय: कहा जाता है कि संघर्ष के तीन प्रमुख कारण होते हैं- 1. जर (धन) 2. जोरू (स्त्री) 3. जमीन। जमीन अर्थात् पृथ्वी को सब अपना कहते हैं किन्तु जमीन सभी को धारण करती हुई अपने 'क्षमा' नाम को सार्थक करती है। जो मनुष्य 'सब ठाठ पड़ा रह जाएगा, जब लाद चलेगा बंजारा' के गीत गाता है, वही पृथ्वी पर एक छत्र राज करने के सपने देखता है। सपने कभी पूरे तो नहीं हो पाते, क्योंकि इनकी सीमा अपनी बनाई सीमा का सदैव अतिक्रमण करती है। सुप्रसिद्ध दार्शनिक इमर्सन ने लिखा है कि— 'एक समय अनेक लोगों ने बहुत शस्य श्यामला भूमि पर अधिकार कर लिया। वे अपनी जागीर में घूमते हुए गर्व का अनुभव कर रहे थे। वे कहते थे यह भूमि तो हमारी है।' उस समय पृथ्वी से प्रतिध्वनि उत्पन्न हुई कि-

They call me theirs
Who so controlled me :
Yet every one
Wished to stay, and is gone.
How am I theirs
If they cannot hold me,
But I hold them?

- जिन्होंने मुझ पर अधिकार जमाया, उन्होंने कहा- 'यह पृथ्वी हमारी है।' प्रत्येक ने चाहा कि वह यहाँ निवास करे, किन्तु वह चला गया। बताओ! मैं उनकी किस प्रकार हूँ? वे मुझे पकड़ नहीं सकते, किन्तु मैं ही उनको अपने अधीन करती हूँ। जीवन की इस सच्चाई को 'तेरा-मेरा' का विश्वासी मनुष्य आसानी से ग्रहण नहीं कर पाता है। भगवान् ऋषभदेव ने वैराग्य से पूर्व अपने 101 पुत्रों में बराबर राज्य का विभाजन किया, किन्तु फिर भी भरत और बाहुबली के बीच घोर संघर्ष हुए। नेत्र, जल और मल्ल युद्ध की पराजय ने भरत को परास्त ही नहीं किया अपितु चक्रवर्तित्व के मान को चकनाचूर कर दिया। चक्र भी अपरिमित शक्तिवान् होने पर भी उस पर अपना वश नहीं चला सका, जिसके भाग्य में स्ववशी होना लिखा था, जो चरमशरीरी था। स्ववंश का होना भी इसमें महत्त्वपूर्ण प्रमुख कारण बना। सुदर्शनचक्र की विशेषता होती है कि वह जिसके पास होता है, उसके वंशवाले का वध नहीं करता। चक्र तो निष्काम/निष्प्रभ हुआ किन्तु विजेता बाहुबली को संसार की असारता का परिज्ञान कराकर वैराग्य की ओर मोड़ गया। उन्हें प्रतीत हुआ कि संसार असार है। इसमें कोई किसी का साथी नहीं है। एकमात्र आत्मा ही अपनी है और उसी का ध्यान करना चाहिए, उसी पर अधिकार करना चाहिए। बाहुबली ने घोरतप किया। एक वर्ष तक एकाग्र हो खड़े रहे। यहाँ तक कि पैरों के पास साँपों ने बाँबियाँ बना लीं, बेलों-लताओं ने शरीर पर स्थान बना लिया, फिर भी केवलज्ञान (सर्वज्ञत्व) की प्राप्ति नहीं हो सकी। जैसा कि पूर्व में कहा गया है, उनके मन में इस बात का पश्चात्ताप था कि भरत को मैंने दु:ख पहुँचाया है। अत: जब भरत ने आकर उनकी पूजा की, तो वे पश्चात्ताप से मुक्त हो गये और उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया।

भगवान् बाहुबली की मूर्ति का संदेश आत्मवैभव का दिग्दर्शन है। शरीर से परे आत्मवैभव की पहचान आत्मा में डूबने पर ही हो सकती है। भगवान् बाहुबली की मूर्ति बताती है कि-'शुद्धचिद्रूपोऽहम्, नित्यानन्दस्वरूपोऽहम्, शुद्धोऽहं, बुद्धोऽहं, अनन्तचतुष्टयस्वरूपोऽहम्, निरञ्जनोऽहम्, शल्यत्रयरहितोऽहम्, केवलज्ञानस्वरूपोऽहम्, नोकर्मरहितोऽहम्, द्रव्यकर्मरहितोऽहम्, भावकर्मरहितोऽहम्, आनन्दस्वरूपोऽहम्, निर्विकल्पस्वरूपोऽहम्, स्पर्शरसगंधवर्णरहितोऽहम्, क्रोध-मानमायालोभरहितोऽहम्, रागद्वेषमोहरहितोऽहम्, पंचेन्द्रिय व्यापारशून्योऽहम्, सोऽहं, आत्मस्वरूपोऽहम्।' अर्थात् मैं शुद्ध, चिद्रूप हूँ, नित्य आनंदस्वरूप हूँ, शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, अनन्त चतुष्टयस्वरूप हूँ, निरंजन (कालिमा) रहित हूँ, माया-मिथ्या-निदान रूप तीन शल्यों से रहित हूँ, केवलज्ञानस्वरूप हूँ, नोकर्म से रहित हूँ, द्रव्यकर्म से रहित हूँ, भावकर्म से रहित हूँ, आनंदस्वरूप हूँ, निर्विकल्पस्वरूप हूँ, स्पर्श-रस-गंध-वर्ण से रहित हूँ, क्रोध-मान-माया-लोभ रूप चार कषायों से रहित हूँ, राग-द्वेष-मोह से रहित हूँ, स्पर्शन-रसना-घ्राण-चक्षु-श्रोत्र रूप पंच इन्द्रियों के व्यापार (क्रियाओं) से शून्य हूँ, वह मैं हूँ, आत्मस्वरूपी हूँ। माघनन्दि आचार्य द्वारा बताया गया, वह आत्मवैभव भगवान् बाहुबली की मूर्ति एवं चरित से स्पष्ट प्रतिभासित होता है। संसार में भटके हुए प्राणियों के लिए आत्मवैभव बतानेवाला, आत्महितकारी यह मौन/सार्थक उपदेश भगवान् बाहुबली की मूर्ति ही दे सकती है क्योंकि उन्होंने कामदेव होते हुए भी काम को जीता है, प्रथम तीर्थंकर के पुत्र होने पर भी उनसे पहले मोक्षमार्ग को प्रशस्त कर मोक्ष प्राप्त किया है। उनकी मूर्ति शून्य/एकान्त में भले ही स्थित हो किन्तु सांसारिकता के शून्य को बेधती वह सबको बता रही है कि तुम भी मेरे जैसे बन सकते हो क्योंकि तुम में



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी वैसी आत्मा विद्यमान है जैसी कि मुझमें है। तुमने संसार को आँखें खोल-खोलकर देखा अब दृष्टि अपनी ओर मोड़ लो। दृष्टि अपनी ओर मुड़ते ही सारे सृष्टि बदल जाएगी और तुम भी सच्चे अर्थों में जिन, जयी और बाहुबली बन जाओगे। इस मूर्ति के कारण ही आज बाहुबली जिनदेवता के साथ-साथ लोकदेवता के रूप में देश-विदेश में प्रतिष्ठित हैं।

आज जबकि विश्व के अधिकांश देशों में राजसत्ता की प्राप्ति के लिए संघर्ष चल रहे हैं, वहीं भगवान् बाहुबली का जीवन हमें बताता है कि आत्मवैभव के आगे राज्यवैभव तुच्छ है। राजसत्ता का पालन करने के लिए व्यक्ति को अधिकार सम्पन्न होना चाहिए साथ ही कर्म सम्पन्न भी। यदि आप प्राप्त अधिकार का संरक्षण या सदुपयोग नहीं कर सकते तो तुम्हें उस सत्ता पर अधिकार बनाए रखना उचित नहीं है, उसको त्याग देना ही उचित है। बाहुबली को भी उनके पिता भगवान् ऋषभदेव ने पोदनपुर का राज्य दिया था जिसका उन्होंने उचित परिपालन किया और पिता के द्वारा प्रदत्त राज्य के संरक्षण में चक्रवर्ती के चक्र के आगे भी नहीं झुके। उनके लिए प्रजाहित ही सर्वोपरि था। परिणाम यह निकला कि वे चक्र के दुष्चक्र से बाधित नहीं हुए, हाँ इतना अवश्य हुआ कि चक्र को ही उनके आगे झुकना पड़ा। युद्ध की अवस्था में भी बाहुबली का विवेक सदैव जागृत रहा यही कारण है कि मल्लयुद्ध के समय भरत को कंधों तक तो उठा लिया लेकिन उन्हें भूमिसात् करने का विचार तक नहीं आया और उन्हें ससम्मान जमीन पर उतार दिया। अब राज्य सत्ता के लिए संघर्ष समाप्त हो गया था। जब वैराग्य आ गया तो एक क्षण के लिए भी राज्य की ओर नहीं देखा, राज्य के प्रति आसक्ति नहीं दिखाई। आज आवश्यकता है कि हमारे शासनाध्यक्ष भी अपने सामने बाहुबली के इस आदर्श को सामने रखकर शासन करें और प्रजा के हित से विमुख न हों। हम बाहुबली के आदर्श को अपने जीवन में उतारकर ही सुखी एवं समृद्ध जीवन जी सकते हैं। उनका परम तपस्वी जीवन, उत्कृष्ट चरित्र, निरीह प्राणियों के प्रति कृपा एवं अहिंसक दृष्टि आज भी हमारे लिए मार्गदर्शक बन सकती है। यदि समाज के प्रहरी मानवता के प्रति पहरेदार की भूमिका निभाएं तो हमारा जीवन भी सफल हो सकता है और मानवता भी हम महामानवों का सान्निध्य पाकर उपकृत हो सकती है।

भगवान् बाहुबली का जीवन पराधीनता का नहीं स्वाधीनता और संप्रभुता का जीवन है। वे किसी से कुछ छीनना नहीं चाहते थे। वे जो दे सकते थे, उससे उन्होंने कभी इंकार नहीं किया। उनके जीवन के सबसे बड़े आदर्श उनके पूज्य पिता प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव थे और उन्होंने अपने जीवन को उनके ही मार्ग पर चलाकर बता दिया कि वे अपने पिता के सही उत्तराधिकारी थे। राज्यसत्ता का लोभ न उन्हें कभी था और प्राप्त होने पर भी वह उसे बांध नहीं सकी। जो शुद्ध और सच्चरित्र होता है वह किसी बंधन में बँधता ही नहीं, वह तो बंधन मुक्ति के लिए बना होता है। बाहुबली ने अपने जीवन से हम सबको यह बतलाया है कि आनंद का स्रोत आत्मा है। वैर से निर्वैर होकर, वेद से निर्वेद होकर देखो। तप तपाता अवश्य है किन्तु कालिमा को काटता भी है। परिणाम अहिंसक हो, अपरिग्रह की भावना हो तो तुम भी सत्य के पथिक बाहुबली बन जाओगे। इतना स्पष्ट मुखर संदेश आज हमें भगवान् बाहुबली की गोम्मटेश्वर-प्रतिमा से प्राप्त होता है, जिसे प्राप्त करने वाला तत्काल प्रभाव से प्रभावित होता है। उसके अंदर भी वैराग्य के प्रति श्रद्धा जागृत होती है। इस तरह अपरिमित शांति, समता, वैराग्य और सिद्धि को बताने वाली श्रवणबेलगोला स्थित भगवान् बाहुबली की मूर्ति युगों-युगों तक विद्यमान रहे और हम सबको मोक्षमार्ग का दिग्दर्शन कराती रहे; इसी भावना के साथ मैं भगवान् बाहुबली गोम्मटेश्वर को श्रद्धा-भक्ति-युक्त प्रणाम करता हूँ।

**मंत्री- श्री अ.भा.दि.जैन विद्वत्परिषद्**
**एल-६५, न्यू इंदिरा नगर, बुरहानपुर (म.प्र.)**

## आचार्य विद्यासागर वचनामृत

- बड़े से बड़े तप से जो निर्जरा नहीं होती है, वह आगम के अनुसार चर्या, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त से होती है।
- जो संकल्पों को पूर्ण रूप से पालता है, वही सही अर्थों में व्रतों में दीक्षित है।
- जिस प्रकार बाजार में सामान खरीदने जाते हैं, तो पैसों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार जब हम शुद्धोपयोग आदि ध्यान एवं तप करना चाहें, तो उसके लिए २८ मूलगुण होना जरूरी हैं।

**'सर्वोदयादि पंचशतकावली व स्तुति-सरोज संग्रह' से साभार**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# गोम्मटेश्वर बाहुबली और गोमटेसथुदि : एक अनुशीलन

डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु'

प्रत्येक अतीत से वर्तमान उपजता है, और प्रत्येक वर्तमान भविष्य का सर्जक है। इतिहास का यह चक्र काल की ध्रुवता की धुरी पर घूमता है। अतीत के किस कालखण्ड के छोर पर आरम्भ हुआ होगा वह ध्रुव, जिसके चौदहवें मनु या कुलकर नाभिराय थे? स्वयं नाभिराय के पुत्र, प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ-ऋषभदेव युग-प्रणेता पुराण पुरुष हैं। उनका व्यक्तित्व एक ऐसी आधारशिला है, जिसके ऊपर विश्व के समस्त धर्मों का एक सर्वमान प्रासाद खड़ा किया जा सकता है।[१]

राज्य व्यवस्था सम्पादित करने में सन्नद्ध भगवान् ऋषभदेव के दरबार में देवों और अप्सराओं के साथ समागत इन्द्र चिन्तित था कि भगवान् राज्य और भोगों से किस प्रकार विरक्त होंगे? चिंतन के उपरांत इन्द्र ने नृत्य के लिए ऐसे पात्र को नियुक्त किया जिसकी आयु अत्यन्त क्षीण हो गई थी, वह थी 'नीलांजना' अप्सरा। नृत्य करते-करते ही आयु के क्षय होने से क्षण भर में वह विलीन हो गई। इस प्रसंग ने भगवान् ऋषभदेव के हृदय पर गहरा प्रभाव डाला। वे संसार, शरीर तथा भोगों की क्षण-भंगुरता पर विचार करके तत्क्षण विरक्त हो गये एवं काललब्धि को पाकर मुक्ति के मार्ग पर समुद्यत हुए और उग्र-तपस्या के द्वारा उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया।

भगवान् ऋषभदेव की विरक्ति के उपरान्त यद्यपि 'राजा' उपाधि से भरत और बाहुबली दोनों को अलंकृत किया गया था, किन्तु कुल में ज्येष्ठ होने के कारण भरत अपना वर्चस्व चाहते थे, अत: उन्होंने दिग्विजय के लिए प्रयाण किया। सर्वत्र हार्दिक स्वागत प्राप्त करते हुए वापसी में उनका 'चक्र' अयोध्या के गोपुरद्वार को पार करके आगे नहीं जा सका और अटककर वहीं रुक गया। तब आश्चर्यचकित सभी को निमित्तज्ञानियों ने बताया कि हे महाराज भरत! यद्यपि आपने बाहर विजय प्राप्त कर ली है तथापि आपके घर के सदस्य अभी आपके अनुकूल नहीं हैं, इनमें आपके भाई बाहुबली प्रमुख हैं।

बाहुबली के पास संदेश भेजा गया कि वे भरत को प्रणाम कर सम्मानित करें। बाहुबली इस मर्मभेदक संदेश को सहन नहीं कर सके। उन्होंने उत्तर दिया कि 'अग्रज नमस्कार करने योग्य हैं' यह बात सामान्य समय में उचित है, किन्तु जब वह तलवार धारण कर दिग्विजय के लिए प्रस्थित हैं, तब उन्हें प्रणति-निवेदन कैसे उपयुक्त हो सकता है? अत: मुझे पराजित किये बिना भरत इस पृथ्वी का उपभोग नहीं कर सकते। प्रणाम के स्थान पर मैं उन्हें समाह्वय ही दे सकता हूँ।

फलत: संघर्ष अनिवार्य हो गया। दोनों ओर से भयंकर युद्ध की तैयारी हुई। दोनों ओर के मंत्रियों ने सोचा कि ये दोनों भाई तद्भव मोक्षगामी हैं, अत: युद्ध में जन-धन की अनावश्यक हानि नहीं होना चाहिए। इसलिए भरत और बाहुबली दोनों में सीधा धर्मयुद्ध हुआ। भरत दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध में पराजित हो गये तो, उन्होंने रीझकर बाहुबली पर 'चक्ररत्न' चला दिया, किन्तु बाहुबली के अवध्य होने के कारण वह बाहुबली की प्रदक्षिणा देकर निस्तेज हो भरत के पास ही वापस चला गया।

इस पर बाहुबली ने सोचा कि देखो! इस नश्वर राज्य के लिए हमारे बड़े भाई ने हमें मारने का कैसा जघन्य कार्य किया है? वस्तुत: यह राज्य तो क्षणभंगुर है। अत: वे विरक्त हो गये और मुनिव्रत को धारण कर निर्ग्रन्थ बन गये। उन्होंने निरंतर एक वर्ष तक निराहार खड़े रहकर 'प्रतिमा-योग' धारण किया। वन की लताएँ उन पर छा गयीं। सर्प तथा अन्य विषैले सरीसृप उनके ऊपर फूत्कार करते रहे। केश कंधों तक आ गये। उनके मन में इस बात का पश्चात्ताप विद्यमान था कि भरतेश्वर को मुझसे दु:ख पहुँचा है। अत: जब भरत ने उनकी पूजा की तो वे पश्चात्ताप से मुक्त हो गये और उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया है। (महापुराण ३६/१८६)। बाहुबली सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हो गये और कुछ ही वर्षों के बाद शेष कर्मों का क्षय करके मुक्त हो गये। इस प्रकार भगवान् ऋषभदेव के इतिवृत के चित्र में उनके दोनों पुत्रों भरत और बाहुबली के रंगों में पूर्णता आई है। भरत और बाहुबली दोनों महामानव थे। दोनों के चरित्र स्वतंत्र हैं, किन्तु दोनों परस्पर पूरक भी हैं। बाहुबली का चित्र बहुरंगी है और उनका प्रत्येक रंग चटकदार है। उनकी महानता आकाश की ऊँचाइयों को छूती है। उनके जीवन के हर मोड़ पर एक नया कीर्तिमान स्थापित होता चलता है।

वे इस युग के प्रथम कामदेव (त्रिलोक सुन्दर) थे, अत: 'गोम्मटेश्वर' कहलाते थे साथ ही अप्रतिम बली थे इसलिए वे 'बाहुबली' कहलाते थे। वे अपने अधिकारों की रक्षा के



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रति सर्वदा जागरुक रहते थे। अधिकारों की रक्षा करने का साहस और सामर्थ्य भी उनमें था, किन्तु कर्तव्यों के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित थे। दिग्विजय कर भरत 'सार्वभौम सम्राट' का विरुद प्राप्त करना चाहते थे। बाहुबली का स्वतंत्र अस्तित्व इसमें बाधक था। बाहुबली के मन में अग्रज के प्रति अवज्ञा का भाव नहीं था, किन्तु पिता से प्राप्त राज्य का उपभोग और उसकी सुरक्षा उनका स्वत्व था-उसकी रक्षा करना ही उनका कर्तव्य बन गया था। दोनों पक्षों के औचित्य-अनौचित्य की परीक्षा अहिंसक युद्ध के माध्यम से हुई। इसी घटना से उत्पन्न हुई विरक्ति ने बाहुबली को उग्र तपस्वी, श्रमण-साधु बना दिया।

इन्हीं बाहुबली का आख्यान इतिहास के अंतराल और दिशाओं की दूरी को अतिक्रान्त करता हुआ दक्षिण भारत के कर्नाटक राज्य के श्रवणबेलगोल सुरम्य पर्वत शिखर विंध्यगिरी-इन्द्रगिरी पर पहुँचा। जहाँ अब से एक हजार वर्ष पूर्व चैत्र शुक्ला पंचमी, विक्रम संवत् १०३८, दिनांक १३ मार्च सन् ९८१ ईस्वी, गुरुवार को वीरमार्तण्डचामुण्डराय ने गोम्मटेश्वर बाहुबली की ५७ फीट ऊँची एक विशालकाय अतिशय मनोज्ञ प्रस्तर प्रतिमा की स्थापना अपने महनीय गुरु सिद्धान्तचक्रवर्ति श्री नेमिचन्द्र जी के सान्निध्य में की थी।

चामुण्डराय गंगवंशी राजा राचमल्ल (९७४-९८४ ईस्वी) का यशस्वी प्रधानमंत्री और सेनापति था। वह महान् राष्ट्रभक्त था। उसने इस वंश के तीन शासकों के साथ राष्ट्रसेवा की थी। अभिलेखों में उसकी विस्तृत यशोगाथा का वर्णन प्राप्त होता है। उसे अनेक उपाधियाँ प्राप्त थीं। चामुण्डराय एक बुद्धिमान् महामात्य, राजनेता, वीरयोद्धा, सेनापति और उच्चकोटि का साहित्यकार भी था। चामुण्डराय का घरेलू नाम 'गोम्मट' था। उसके इस नाम के कारण ही उनके द्वारा स्थापित बाहुबली की मूर्ति 'गोम्मटेश्वर' के नाम से प्रसिद्ध हुई। डॉ.ए.एन.उपाध्ये प्रभृति विद्वानों के मतानुसार 'गोम्मटेश्वर' का अर्थ है-'चामुण्डराय का देवता'। इसी गोम्मट उपनाम धारी चामुण्डराय के लिए ही नेमिचन्द्राचार्य ने 'गोम्मटसार' नामक ग्रन्थ की रचना की थी।[२]

यद्यपि चामुण्डराय को अनेक मंदिरों और मूर्तियों के निर्माण कराने का श्रेय है, किन्तु भारत को उनकी सबसे मूल्यवान देन श्रवणबेलगोल स्थित ५७ फीट ऊँची बाहुबली की एक ही प्रस्तरखण्ड से निर्मित मनोरम मूर्ति है।

श्रवणबेलगोल कर्नाटक राज्य के हासन जिले में अत्यन्त प्राचीन, रमणीक और विश्वविख्यात सांस्कृतिक तीर्थस्थल है। यहाँ के शिलालेख भव्य, प्राचीन-मंदिर और विशाल मूर्तियाँ न केवल जैनदृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं; प्रत्युत भारत की प्राचीन सभ्यता, संस्कृति, कला, पुरातत्त्व और इतिहास की ये सब बहुमूल्य धरोहर हैं।

श्रवण=श्रमण-जैन मुनि, वेल=श्वेत उज्ज्वल (कन्नड़ भाषा में), गोल=सरोवर, अत: इस पूरे पद का अर्थ है- 'जैन साधुओं का धवल सरोवर'। यहाँ के विंध्यगिरी पर गोम्मटेश्वर की दिगम्बर निर्विकार,कायोत्सर्गासन, उत्तराभिमुखी, ध्यानस्थ, सौम्य प्रतिमा अवस्थित है। इसके भव्य दर्शन श्रवणबेलगोल से १५ मील पूर्व से ही प्रारम्भ हो जाते हैं। विंध्यगिरी का स्थानीय नाम 'दोडवेट्टा' (बड़ी पहाड़ी) है। यह समुद्र तल से ३३४७ फुट ऊपर है और निम्नवर्ती मैदानी भाग से ४७० फुट ऊँची है। इस मूर्ति का प्रधान भास्कर (निर्माता) था- अरिष्टनेमि और प्रतिष्ठाचार्य थे सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र जी।

गोम्मटेश्वर बाहुबली की यह मूर्ति यद्यपि दिगम्बर जैन है, परन्तु वह संसार की अलौकिक निधि है, जो शिल्पकला का बेजोड़ रत्न है। यह समग्र मानव-जाति की अमूल्य धरोहर है। इस मूर्ति में पाषाण, काठिन्य और कलात्मक कामनीयता का मणि-काँचन योग इतना बेजोड़ है, कि एक हजार वर्ष बीत जाने पर भी यह मूर्ति सूर्य, मेघ, वायु आदि प्रकृति देवी की अमोघ शक्तियों से बातें करती हुई अक्षुण्य है। आगे, पीछे, बगल में बिना किसी आश्रय तथा बिना किसी छाया के अवस्थित यह मूर्ति विश्व का आठवाँ आश्चर्य है। यह कला का चरमोत्कृष्ट निदर्शन है। महाकवि कालिदास की यह पंक्ति-'**क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयताया:**'- इस मूर्ति पर अक्षरश: चरितार्थ होती है। भगवान् बाहुबली की यह मूर्ति वर्तमान क्षुब्ध संसार को संदेश दे रही है कि परिग्रह और भौतिक पदार्थों की ममता ही पाप का मूल है। जिस राज्य के लिए भरतेश्वर ने मुझसे संग्राम किया, मैंने विजयी होकर भी उस राज्य को जीर्ण-तृणवत् क्षण भर में त्याग दिया। यदि तुम शांति चाहते हो तो मेरे समान निर्द्वन्द्व होकर आत्मरत होओ। यह मूर्ति त्याग, तपस्या और तितिक्षा का प्रतीक है।

परमपूज्य ऐलाचार्य मुनि श्री १०८ विद्यानन्दजी के पावन सान्निध्य में २२ फरवरी १९८१ ईस्वी, रविवार को इस विश्वविश्रुत मूर्ति का सहस्राब्द प्रतिष्ठापना तथा महा मस्तकाभिषेक महोत्सव सम्पन्न हुआ था। उस महोत्सव में देश-विदेश के लक्ष-लक्ष जन सम्मिलित होकर भगवान् बाहुबली और भारतीय अध्यात्म के प्रति अपनी श्रद्धानिर्भर अंजलि समर्पित कर चुके हैं। इस भव्य मूर्ति के प्रतिष्ठाचार्य,



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने युग के अप्रतिम रचनाकार सिद्धान्तचक्रवर्ती श्री नेमिचन्द्राचार्य द्वारा प्राकृत में गुणानुवाद रूप 'गोम्मटेस-थुदि' सृजित हुई थी।

यह 'गोम्मटेस-थुदि' (गोम्मटेश स्तुति:) प्राकृत-जैन शौरसेनी भाषा[३] में निबद्ध एक महत्त्वपूर्ण स्तुति काव्य है। इस स्तुति के रचयिता दशवीं शताब्दी ईस्वी के उद्‌भट विद्वान् आगमशास्त्र के अद्वितीय पण्डित, प्रख्यात जैनाचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती हैं, जिन्होंने अपने बुद्धिरूपी चक्र से षट्‌खण्ड आगमसिद्धान्त को सम्यक् रीति से अधीन किया था।[४] उन्होंने दर्शनशास्त्र के अनेक ग्रंथों की रचना की, जिनमें गोम्मटसार, त्रिलोकसार, लब्धिसार तथा क्षपणासार आदि प्रमुख हैं।[५]

आचार्य नेमिचन्द्र दक्षिण भारत के निवासी और गोम्मटेश प्रभु के परम भक्त थे। अत: उनके द्वारा रचित इस स्तुति में उनका भक्तिभाव रसप्लावित हो उठा है। हृदयगत भावों को शब्दों के माध्यम से मूर्तरूप देने की उनमें अद्‌भुत क्षमता थी। वे कोरे भक्त नहीं, प्रत्युत उत्कृष्ट कोटि के कवि भी थे।

प्राकृत-भाषा की मधुरता तथा शब्दौचित्य के ज्ञान से स्तुति को अनुपम बना दिया है। अर्थ गाम्भीर्य ने इसमें प्राण फूंके हैं। प्रत्येक सहृदय इसे पढ़ने के लिए विवश हो उठता है। इस स्तुति के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि आचार्य नेमिचन्द्र जी ने श्री गोम्मटेश्वर बाहुबली के पादमूल/पादपद्मों में बैठकर इसकी रचना की होगी। मूर्ति का प्रत्यक्षत: सूक्ष्म अवलोकनकर्ता ही इतना भव्य और विशद् विश्लेषण कर सकता है।

संस्कृत के 'उपजाति' छंद में निबद्ध प्राकृत भाषा की रचना कितनी भव्य हो सकती है, यह स्तुति उसका जीवंत प्रमाण है। आकार में लघु होने पर भी यह स्तुति एक उत्कृष्ट साहित्यिक कृति है।

इस गोम्मटेश स्तुति को सर्वजन सुलभ और बोधगम्य बनाने की दृष्टि से परमपूज्य आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी मुनि महाराज द्वारा हिन्दी पद्यानुवाद तथा परमपूज्य ऐलाचार्य १०८ मुनि विद्यानन्दजी (अब आचार्य) द्वारा हिन्दी अर्थ से समलंकृत किया गया है। प्राकृत पदों की संस्कृत छाया मेरे द्वारा की गई है तथा सम्पादन में विचार विमर्श पूर्वक पाठान्तर तथा आवश्यक विवरण पाद टिप्पणी में अंकित किए हैं। अत: ऐसी प्रशस्त कृति को डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) ने सन् १९८३ से अपनी बी.ए. संस्कृत तथा एम.ए. संस्कृत सम्बन्धी 'प्राकृत तथा जैन विद्या' वर्ग के पाठ्यक्रम हेतु पाठ्यग्रंथ के रूप में स्वीकार लिया है तथा जबलपुर एवं इंदौर विश्वविद्यालयों में भी यह एम.ए. में निर्धारित है।

विश्वास है विश्ववंद्य भगवान् गोम्मटेश्वर बाहुबली और उनकी मूर्ति के वैशिष्ट्य को रेखांकित करने वाले आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती की यह 'गोम्मटेस थुदि' (गोम्मटेश स्तुति) कोटि-कोटि कण्ठों से मुखरित होकर सहस्राब्द प्रतिष्ठापना के अनन्तर होने वाले द्वितीय महामस्तकाभिषेक के पवित्र एवं ऐतिहासिक संदर्भ में संपूर्ण विश्व को भगवान् गोम्मटेश्वर के चरणों में प्रणमित होने का अवसर प्रदान करेगी।

भगवान् बाहुबली के महामस्तकाभिषेक महोत्सव के पावन अवसर पर सम्पूर्ण विश्व, सम्पूर्ण मानवता और सभी प्राणियों की सुख-शांति समृद्धि के लिए अपनी मंगल भावनाएँ इस सुप्रसिद्ध पद्य के माध्यम से समर्पित करता हूँ:-

**क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपाल:,**
**काले काले च सम्यग् वर्षतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम्।**
**दुर्भिक्षं चौरमारी, क्षणमपि जगतां मा स्म भूजीवलोके,**
**जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्व-सौख्य-प्रदायी'।।**[६]

## संदर्भ


१. ऐलाचार्य श्री १०८ विद्यानन्दजी मुनि : अन्तर्द्वन्द्वों के पार: गोम्मटेश्वर बाहुबली, आशीर्वचन पृष्ठ३।
२. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य: तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, खण्ड- २, पृष्ठ ४२१
३. पण्डित लक्ष्मीधर; षट्‌भाषाचन्द्रिका, पृष्ठ२६- शूरसेन जनपद (ब्रजमण्डल, मथुरा के आसपास के प्रदेश) में जो भाषा बोली जाती थी, उसी का नाम 'शौरसेनी प्राकृत' है।
४. आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती- गोम्मटसार कर्मकाण्ड,
जह चक्केण य चक्की छक्खंडं साहियं अविग्घेण।
तह मइ- चक्केण मया छक्खंडं साहियं सम्मं॥ गाथा ३९७
५. आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विशेष परिचय के लिए देखें-
(अ) डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य; तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, खण्ड २ पृष्ठ-४१७-३३
(ब) डॉ. जगदीश चन्द्र जैन; प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३१२-३१५
६. आचार्य पूज्यपाद; शान्ति भक्ति, पद्य-७



**निदेशक**
**संस्कृत, प्राकृत तथा जैन विद्या अनुसंधान केन्द्र**
**२८, सरस्वती नगर, दमोह, म.प्र.**





Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गतांक से आगे

# शासनदेव पूजा-रहस्य

श्री रतनलाल जी कटारिया

यही बात निम्नांकित ग्रंथों के विसर्जन श्लोक और मंत्रों में स्पष्ट लिखी है-

१

**मंगलार्थं समाहूता विसर्ज्याखिलदेवता:।**
**विसर्जनाख्यमंत्रेण वितीर्य कुसुमांजलिं॥१२४॥**
**ॐ जिनपूजार्थं समाहूता देवता विसर्जनाख्य मंत्रेण सर्वेविहितमहामहा: स्वस्थानं गच्छत य: य: य:।**
**इति विसर्जन मंत्रम्।** प्रतिष्ठासारसंग्रह : वसुनंदि

२

**प्रागाहूता देवता यज्ञभावै**
**प्रीता भर्त्तु: पादयोरर्घदानै:।**
**क्रीतां शेषां मस्तकै रुद्वहंत्य:,**
**प्रत्यागन्तुं यान्त्वशेषा यथास्वं॥६५॥**

**नित्य महोद्योत : पं. आशाधर**

३

ॐ जिन पूजार्थमाहूता देवा: सर्वे विहित महामहा: स्वस्थानं गच्छत गच्छत ज: ज: इति विसर्जन मन्त्रोच्चारणेन यागमण्डले पुष्पांजलिं वितीर्य देवान् विसर्जयेत्॥

**( जिनयज्ञकल्प अध्याय 5: आशाधर )**

४

**देव देवार्चनार्थं ये समाहूताश्चतुर्विधा:।**
**ते विधायार्हतां पूजां यांतु सर्वे यथायथं॥**

**इन्द्रनंदिसंहिता**

५

**दधे मूघ्नार्हित: शेषाहूता सर्वदेवता।**
**मया क्रमाद् विसृज्यन्ते निर्गच्छामि जिनालयात्॥**

**( इन्द्रनंदि संहिता पूजासार पत्र ६२ )**

इनमें बताया है कि- 'जिनपूजा के लिए जिनका आह्वान किया गया है और जिन्होंने पूजाद्रव्य प्राप्त कर उससे जिन-पूजा कर ली है,वे सब देवगण अपने-अपने स्थान को जावें।'

ये सब श्लोक और मंत्र 'आहूता ये पुरा देवा'। इस श्लोक में हूबहू रूपांतर है तथा इनसे '**ते जिनाभ्यर्चनं कृत्वा**' इस शुद्ध पाठ की भी ठीक पुष्टि हो जाती है।

अभयनंदिकृत लघुस्नपन (भावशर्मकृत टीका) में लिखा है -

१. **गंधं बंधुरधी: प्रतीच्छतुतरामत्रार्हत: पूजने॥२१॥**

(टीका-बंधुरधी: = धनपति:, अत्रार्हत: पूजने= क्रियमाणे सर्वज्ञस्य स्नपने, गंधं= गंधादियज्ञभागं, प्रतीच्छतुतरां= अतिशयेन स्वीकुरुताम्)

२. **पात्रं द्राक् प्रतिगृह्यतामिह महे पुष्पादिकाभ्यर्चनम्**॥२२॥

(टीका-पुष्पादिकमेवाभ्यर्चनं पूजाद्रव्यं तदेव स्वकं पात्रं, द्राक्=शीघ्रं, इहमहे=अस्मिन्नभिषेके, प्रतिगृह्यतां=स्वीक्रियताम्।)[१०]

इनमें भी अर्हत्पूजन के लिए ही गंधादि पूजाद्रव्य और पूजापात्र दिग्पालों को ग्रहण करने के लिए लिखा है।

इस तरह 'शासनदेवपूजा' शब्द का अर्थ शासनदेवों की पूजा सिद्ध नहीं होता है, किन्तु शासनदेवों द्वारा जिनपूजा सिद्ध होता है यही अर्थ सब जगह ग्रहण करना चाहिए। अर्थात् 'शासनदेवपूजा' शब्द में षष्ठीतत्पुरुषसमास न होकर तृतीयातत्पुरुषसमास लेना ही सुसंगत होगा।

प्रश्न- गुणभद्रकृत अभिषेकपाठ के श्लोक ४९ के मंत्र भाग में लिखा है -'**ॐ इन्द्र! आगच्छ इदं अर्घ्यं यज्ञभागं च योजामहे प्रतिगृह्यतां**'।

इसमें पूजार्थक यज् धातु के प्रयोग से इन्द्र नाम के दिग्पाल की पूजा सिद्ध होती है (अभिषेकपाठ संग्रह पृष्ठ २३) ऐसा ही अभयनंदिकृत लघुस्नपन के श्लोक १५ के मंत्रभाग में लिखा है (अभिषेकपाठसंग्रह पृष्ठ ६७) इन सबका क्या समाधान है?

उत्तर- '**यजे देवपूजासंगतिकरणदानेषु**' अर्थात् यज् धातु के तीन अर्थ होते हैं १. देवपूजा २. संगति करना,सन्निकट होना ३. देना। यहाँ यजामहे का अर्थ ददामहे=देता हूँ है( देखो अभिषेकपाठसंग्रह पृष्ठ ६७) भावशर्मकृत टीका। यहाँ 'यजामहे' का ददामहे के सिवा और कोई दूसरा अर्थ संभव ही नहीं है। पूजा अर्थ तो तब होता जब अर्घ्य और यज्ञभाग शब्द द्वितीयाविभक्ति के बजाय तृतीयाविभक्ति में होते, किन्तु ऐसा है नहीं। इसी से टीकाकार भावशर्म ने यजामहे का अर्थ स्पष्टतया ददामहे ही दिया है। पूरे मंत्र भाग का सही अर्थ इस प्रकार है - हे इन्द्र आओ और यह अर्घ्य, यज्ञभाग तुम्हें देता हूँ, इसे स्वीकार करो।

यहाँ 'गृह्यतां' (ग्रहण करो) शब्द से ही काम चल सकता था, फिर भी जो 'प्रति' उपसर्ग लगाया है वह जिनेन्द्र के प्रति ग्रहण करो इस भाव के द्योतन के लिए लगाया है। अर्थात् यह पूजाद्रव्य दिग्पाल की पूजा के लिए प्रदान नहीं किया



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया है, किन्तु जिनपूजा के लिए दिग्पाल को दिया गया है। यह आशय स्पष्ट अभिव्यक्त होता है।[१२]

यज् धातु के जो ऊपर ३ अर्थ बताए हैं, उनमें पूजा अर्थ अरहंत ही के साथ लगाना चाहिए बाकी देना और संगति करना अर्थ भवनत्रिक देवों के साथ लगाना चाहिए।

नित्यमहोद्योत श्लोक ९५ की टीका में (अभिषेकपाठ संग्रह पृष्ठ १८७ में) लिखा है-'यजे=पूजयामि इति सन्निधिकरणं सूचितं अर्थात् यहाँ यज् धातु का तात्पर्य सन्निधिकरण अर्थ में है। आगे के श्लोकों में भी यज् धातु का प्रयोग है, उन सबका यही अर्थ है कि इन्द्र भवनत्रिक देवों को जिनपूजार्थ अपने सन्निकट (साथ में)' लेता है[१३]। अथवा भवनत्रिकों को जिनपूजार्थ पूजाद्रव्य देता है।[१४]

नित्यमहोद्योत श्लोक ५१ (अभिषेकपाठ संग्रह पृष्ठ १५१) में 'भूम्यर्चन' (भूमिपूजा) का कथन है, उसका टीकाकार ने अर्थ- 'भूमि-शुद्धि' दिया है। नीचे पाद टिप्पण में लिखा है-

**'ॐ ह्रीं श्रीं क्ष्वीं भू शुद्ध्यतु स्वाहा। भूमिशोधनम्।।'**

यही बात गुणभद्रकृत वृहत्स्नपन के श्लोक २ में इस प्रकार दी है -**ॐ शोधयामि भूभागं जिनेन्द्राभिषेकोवोत्सवे।। भूमिशोधनम्।** (अभिषेकपाठसंग्रह पृष्ठ १४,पृष्ठ १४५) **दर्भपूलेन भूमि सम्मार्जयेत्।** यहाँ भूमिपूजा का अर्थ भूमि की अष्टद्रव्य से पूजा नहीं है, किन्तु जलादि से भूमि का धोना और बुहारी से भूमि का प्रमार्जन करना है जो सार्थक और संगत है।

इसी तरह पीठार्चन का अर्थ पीठ की जलादि से शुद्धि[१६] और पीठ पर अष्टद्रव्य थाल रखना है। कलशार्चन का अर्थ भी चारों कोणों में कलशों की स्थापना करना है। यही पीठ और कलश की सही पूजा है।

नित्यमहोद्योत श्लोक ७३ के 'प्रसादय' पद का टीकाकार ने 'प्रसन्नीकृत्य पूजयित्वा' अर्थ किया है (अभिषेकपाठसंग्रह पृष्ठ १६३) इससे पूजा का अर्थ प्रसन्न करना भी हो जाता है।

इस तरह अर्चन या पूजा शब्द का अर्थ सर्वत्र अष्टद्रव्य से पूजन करना ही नहीं होता है, किन्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावानुसार विविध अर्थ हो जाते हैं। प्रकरणानुसार संगत अर्थ ही लेना चाहिए।

सोमदेवसूरि ने 'यशस्तिलकचम्पू' आश्वास ८ में लिखा है-

**देवं जगत्रयीनेत्रं, व्यन्तराद्याश्च देवताः।**
**समं पूजाविधानेषु, पश्यन्दूरं व्रजेदधः ।। २०।।**
**ताः शासनाधिरक्षार्थं कल्पिताः परमागमे।**
**अतो यज्ञांशदानेन माननीयाः सुदृष्टिभिः।। २४।।**

अर्थात् सर्वज्ञदेव अरिहंत और व्यंतरादि देवताओं को पूजा विषय में जो समान देखता है, वह नीचे-नरक में दूर तक जाता है अर्थात् सातवें नरक के नीचे जो निगोद स्थान है वहाँ तक का पात्र होता है।।२४०।।

वे व्यन्तरादि देवता शासन की रक्षा के लिए आगम में कल्पित किए गए हैं, अतः सम्यग्दृष्टि उन्हें (जिनपूजार्थ) पूजाद्रव्यभाग देकर सम्मानित प्रसन्न करें।। २४१।।

इसमें व्यन्तरादि देवों की पूजा तो दूर, पूजा की दृष्टि मात्र को नरक-निगोद का स्थान बताया है।

जिस तरह सुभौम चक्रवर्ती ने व्यन्तरदेव के बहकावे में आकर जल में नमस्कार मंत्र लिख उसे मिटा दिया था और जिससे वह सातवें नरक में गया,तो जो व्यन्तरपूजा (मिथ्यात्व सेवन) करते हैं, वे तो निश्चय ही नरक निगोद के पात्र होंगे, इसमें कोई संशय नहीं। इसी से स्वामी समन्तभद्र ने रत्नकरण्डक श्रावकाचार में लिखा है -

**न सम्यक्त्वसमं किंचित् त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।**
**श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत् तनुभृताम्।।३४।।**

अर्थात् प्राणियों के लिये तीनों कालों और तीनों लोकों में सम्यक्त्व के समान दूसरा न तो कोई हितकारी है और न मिथ्यात्व के समान कोई दूसरा अहितकारी है।

ऊपर श्लोक २४१ में सोमदेव ने कल्पित शासनपालों को जिनपूजार्थ पूजाद्रव्य देना बताया है, स्वयं उनको पूजना नहीं बताया है, अगर उन्हें ऐसा बताना इष्ट होता तो वे "माननीयाः" की बजाय "पूजनीयाः" शब्द का प्रयोग कर सकते थे। किन्तु ऐसा है नहीं, सोमदेव ने तो यशस्तिलकचम्पू के आश्वास ६ श्लोक १३९ से १४२ में सूर्य को अर्घ्य प्रदान करना यक्षादि की सेवा पूजा करना इनको स्पष्ट मूढ़ता-मिथ्यात्व बताया है।

इन्द्र शासनदेव का आह्वान और उन्हें अर्घ्य-समर्पण जिनपूजा ही के लिये करता है, इसकी अभिव्यक्ति जिनयज्ञ कल्प (आशाधर कृत) अध्याय ३ के निम्नांकित श्लोकों से भी अच्छी तरह होती है :-

**प्रभुं भक्तुमिहागत्य प्राचीं चिन्वन्निजश्रिया।**
**बलिं विजययक्षेश मंत्रपूतां स्वसात्कुरु।। १९६।।**
**अत्रापाचीमलंकृत्य भजमानो जगत्पतिम्।**
**यथार्हबलिसंतुष्टो वैजयंत जयं तनु।। १९७।।**
**देवाधिदेवसेवायै प्रतीचीं दिशमास्थितः।**
**बलिदानेन संप्रीतो जयंत जय दुर्जयान्।। १९८।।**

इनमें कहीं भी पूजाद्रव्यों से यक्षों को पूजित करने की बात नहीं लिखी है किन्तु जिनेन्द्र की पूजा के लिये दिये गये पूजाद्रव्यों से उनका संतुष्ट होना लिखा है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न-जिनयज्ञकल्प अपरनाम प्रतिष्ठासारोद्धार यानि आशाधर प्रतिष्ठापाठ के अध्याय ३ श्लोक ५० में अच्युतादेवी के लिये "प्रणौमि"(नमस्कार करता हूँ) यह कैसे लिखा है?

उत्तर-जैन ग्रन्थ उद्धारक कार्यालय बम्बई से वि.सं. १९७४ में मुद्रित प्रति का पाठ गलत है। हमने आमेर शास्त्र भण्डार की वि.सं. १५९० की प्राचीन हस्तलिखित प्रति मंगाकर देखी तो उसमें 'प्रणीमि' की जगह 'प्रणामि' (संतुष्ट करता हूँ) शुद्ध पाठ मिला है।

देवदेवियों की पूजा भक्ति की रूढ़िवश अविवेकी प्रतिलिपिकरों ने ऐसे गलत पाठ बना दिये हैं। शुद्धपाठ प्रणामि (संतुष्ट करता हूँ) ही है इसकी पुष्टि उपरोक्त श्लोकों के आगे पीछे के श्लोक ५४, ४५ तथा १९०, १९१ में दिये 'प्रीणिताः', 'प्रमोदस्व', 'तर्पयामि' 'प्रीणयामि' पाठों में भी होती है। ये सब पाठ भी 'सन्तुष्ट करता हूँ' इस अर्थ के ही वाचक हैं।

'अभिषेकपाठसंग्रह' पुस्तक में जितने अभिषेकपाठ दिये हैं, उनमें एवं अन्य अभिषेकपाठों में तथा प्रतिष्ठादि ग्रन्थों में जो अनेक मंत्र-यंत्र दिये हैं, उन सब में सिर्फ पंचपरमेष्ठीवाचक नामों के आगे ही नमः शब्द का प्रयोग किया गया है, चतुर्णिकाय देवों के लिये कहीं भी नमः शब्द का कोई प्रयोग नहीं किया गया है, इन देवों के लिये तो सिर्फ स्वाहा शब्द का प्रयोग किया गया है।

देवसेनकृत 'भावसंग्रह' गाथा ४४३ से ४७० तक सिद्धचक्र यंत्र, शांतिचक्र यंत्र, पंचपरमेष्ठी चक्र यंत्रों का वर्णन है। इन सबमें बताया है कि- मध्य में **ॐ अर्हद्भ्यो नमः** इत्यादि लिखकर पंचपरमेष्ठी की स्थापना करना चाहिये और उनके परिकर रूप में भवनत्रिक देवों के लिए देवदेव्यै स्वाहा लिखकर देवों का स्थापन करना चाहिये। इनमें कहीं भी देवदेवियों के लिए नमः शब्द का कोई प्रयोग नहीं किया गया है। गाथा ४६८ में इन सब यंत्रों को स्पष्टतया पंचपरमेष्ठी वाचक ही बताया है (कहीं भी देव-देवी, यंत्र-मंत्र नहीं बताया है) देखो :-

**ए ए जंतुद्धारे पुज्जइ परमेट्ठि पंचअहिहाणे।**
**इच्छइ फलदायारो पावघणपडल हंतारो॥ ४६८॥**

अर्थात्-ये यंत्रोद्धार पंचपरमेष्ठीवाचक है, इनकी पूजा करने से इच्छानुसार फल की प्राप्ति होती है तथा पापरूपी बादलों के पटल विनष्ट हो जाते हैं।

महापुराण में जिनसेनाचार्य ने पीठिकादि अनेक मंत्र लिखे हैं, उनमें कहीं भी शासनदेवों का नामोल्लेख तक नहीं किया है। वहाँ अरिहंत, सिद्ध ऋषिवाची मंत्रों के आगे तो 'नमः' शब्द का प्रयोग किया है और सुरेन्द्र निस्तारकादि मंत्रों के आगे सिर्फ 'स्वाहा' शब्द का प्रयोग किया है कहीं भी नमः शब्द का प्रयोग नहीं किया है। स्वाहा आह्वान के लिये है और नमः पूजन के लिये है।

'स्वाहा' शब्द का प्रयोग करने से बहुत से लोग ऐसा समझते हैं कि-अग्नि में आहुति देना उन देवों की पूजा करना है, किन्तु ऐसा नहीं है। स्वाहा और आहुति शब्दों का अर्थ आह्वान करना, स्मरण करना है, इस क्रिया की बाह्याभिव्यक्ति के लिए जल में भी अग्नि में द्रव्य अर्पण किया जाता है अथवा ठोने आदि में पुष्पक्षेपण किया जाता है यह पूजा नहीं है किन्तु आह्वान मात्र है।

'स्वाहा' शब्द का प्रयोग मंत्र की पूर्ति के लिए भी होता है यानि आखिर में 'स्वाहा' लिखकर उस मंत्र की समाप्ति की सूचना दी जाती है यथा ॐ ह्रीं श्रीपीठं स्थापयामि स्वाहा। ॐ ह्रीं कलशोद्धरणं करोमि स्वाहा। (अभिषेकपाठ संग्रह पृ. ४२-४४)

इस विषय में विशेष जिज्ञासुओं को 'महावीर जयन्ती स्मारिका १९७०' में प्रकाशित हमारा लेख "पीठिकादि मंत्र और शासनदेव" देखना चाहिये।

प्रश्न-अकृत्रिम चैत्यालयों की पूजा में लिखा है - 'वंदेभावन व्यन्तरान् द्युतिवरान् कल्पामरान् सर्वगान्' इसमें चतुर्णिकाय देवों को नमस्कार बताया है। यह कैसे?

उत्तर-यह पाठ ही अशुद्ध है, शुद्धपाठ जैन सिद्धान्त भवन, आरा आदि ग्रंथ भंडारों की हस्तलिखित प्रतियों में इस प्रकार है:-"**वंदे भावनव्यंतर द्युतिवरस्वर्गामरावासगान्**"। अर्थात् भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क और कल्पवासी देवों के आवासों में विद्यमान अकृत्रिम चैत्यालयों को नमस्कार हो। पूजा का नाम भी "कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालय पूजा" है, पूजा के अंत में जो मंत्र भाग दिया है, उसमें भी यही नाम दिया है। देखो- "**ॐ ह्रीं त्रिलोकसम्बन्धिकृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा**"। कहीं भी चतुर्णिकाय देवों की वंदना-पूजा नहीं बताई है, किन्तु सर्वत्र चतुर्णिकाय देवों के निवास स्थानों में विद्यमान अकृत्रिम चैत्यालयों की वंदना-पूजा बताई है। उपर्युक्त पूजा के श्लोक नं. ३ और ५ में भी पुनः यही प्ररूपण किया है :-

**वनभवन गतानां दिव्यवैमानिकानां।**
**जिनवरनिलयानां भवितोऽहं समरामि॥ ३१॥**
**...................... व्यंतरे स्वर्गलोके।**
**ज्योतिर्लोकेऽभिवंदे भवनमहितले यानि चैत्यालयानि॥**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यही बात 'मंगलाष्टक' के श्लोक नं. ७ में बताई है देखो -

**ज्योतिर्व्यन्तर भावनामरगृहे ............**

**जिनगृहाः कुर्वन्तु ते मंगलं ॥ ७॥**

चैत्य भक्ति में भी देखो -

**भवनविमानज्योतिर्व्यन्तरनरलोकविश्वचैत्यानि।**

**त्रिजगदभिवंदितानां वंदे त्रेधा जिनेन्द्राणाम्॥ ८॥**

प्रश्न-'जिनयज्ञ कल्प' अध्याय ४ श्लोक २१७ में लिखा है-सर्वाणि सैष निहतादू दुरितानि नोऽर्हन्॥ अर्थात्-वे अरहंत हमारे सब पापों को नष्ट करें। इसी तरह श्लोक २१६ में शासनदेवता के लिए भी लिखा गया है कि-'**निवारयंती दुरितानि नित्यं**'। इससे शासनदेवता की पापनाशकता यानि पूज्यता सिद्ध होती है।

उत्तर-श्लोक २१६ में 'दुरितानि' का अर्थ 'पाप' नहीं है किन्तु 'विघ्न' है। अर्थात्-शासनदेवता को विघ्ननिवारण करने वाली बताया गया है, इसी से श्लोक २१७ की तरह निहतादू (नाश करें) क्रिया का प्रयोग न करके श्लोक २१६ में निवारयंती (दूर करने वाली) साधारण क्रिया का प्रयोग किया है।

अगर शासनदेवता को पापनाशिनी माना जायेगा तो वह बिल्कुल संगत नहीं होगा क्योंकि इन देवों के स्वयं के ही पाप (कर्मबंध) नष्ट नहीं हुए हैं तो ये दूसरों के पाप कैसे नष्ट कर सकते हैं। यह पापनाश अर्थ तो जिनेन्द्र के ही साथ संगत होगा। शासनदेवता के साथ तो विघ्ननिवारण अर्थ ही संगत होगा।[21]

आशाधर ने तो शासनदेवों को कुदेव और अवंद्य लिखा है। देखो 'अनगारधर्मामृत' अध्याय ८ -

**श्रावकेणाऽपि पितरौ गुरु राजाप्यसंयताः।**

**कुलिंगिनः कुदेवाश्च न वंद्याः सोऽपि संयतैः॥ ५२॥**

(स्वोपज्ञ टीका-कुदेवाः रुद्रादयः शासनदेवतादयश्च)

यह श्लोक 'मूलाचार' अ. ७ गाथा ९५ के अनुसार बनाया गया है, इस गाथा की संस्कृत टीका में वसुनंदि सैद्धांतिक ने भी नाग यक्षादि समग्रदेव जाति को अवंद्य बताया है।

आशाधर ने 'सागारधर्मामृत' अध्याय ३ श्लोक ७ में लिखा है कि-दार्शनिक श्रावक आपत्ति आने पर भी उसके निवारण के लिये शासनदेवता की कभी भी उपासना नहीं करता। सिर्फ पंचपरमेष्ठी की ही शरण ग्रहण करता है। **(अर्हदादिपंचगुरुचरणेषु अन्तर्दृष्टिर्यस्य स आपदा-कुलितोऽपि दर्शनिकस्तन्निवृत्यर्थं शासनादेवतादीन् कदाचिदपि न भजते।)**

प्रतिष्ठासारोद्धार में भी आशाधर ने लिखा है -

**नाभेयाद्यापसव्यपार्श्वविहितन्यासांस्तदाराधकान्।**

**अव्युत्पन्नदृशः सदैहिकफलप्राप्तीच्छयार्चन्ति यान्॥ १२७॥**

अध्याय ३

अर्थात्-ऋषभादि तीर्थंकरों के दायें पार्श्व में स्थित और तीर्थंकरों के भक्त ऐसे शासनदेवों को कमजोर श्रद्धावाले ना समझ लोग ही लौकिक फलाकांक्षा से पूजते हैं।

**अव्युत्पन्नदृशां शांतक्रूरैहिकफलार्थिनां।**

**मंत्रवीर्यप्रकाशार्थं मंत्रवादे स दर्शितः॥ ४३॥**

अध्याय ६

अर्थात् शासनदेवताओं की प्रतिष्ठापना मंत्रबीज के प्रकाशनार्थ मंत्र शास्त्रों में ही बताई गई है, इनकी उपासना तामसी लौकिक फलाकांक्षी, जिन्हें सम्यक्त्व पैदा नहीं हुआ है, ऐसे अविवेकी मनुष्य ही करते हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द ने मोक्षपाहुड में लिखा है -

**कुच्छियदेवं धम्मं कुच्छियलिङ्गं च वंदए जोदु।**

**लज्जाभयगारवदो मिच्छादिट्ठी हवे सोहु ॥ ९२॥**

अर्थात् भयादि से भी जो कुदेव, कुधर्म, कुगुरु की वंदना करता है, वह मिथ्यादृष्टि होता है।

इसकी श्रुतसागरी टीका में यक्षादि को कुदेव के अन्तर्गत लिया है और उन्हें अवंद्य बताया है।

**सपरावेक्खं लिङ्गं राई देवं असंजदं वंदं।**

**मण्णइ मिच्छादिट्ठी णहु मण्णइ सुद्ध सम्मत्ती॥ ९३॥**

अर्थात् कुगुरु, रागी देव और असंयमी को जो वंदनीय मानता है, वह मिथ्यात्वी है, शुद्धसम्यक्त्वी नहीं।

वृहद्द्रव्यसंग्रह गाथा ४१ की ब्रह्मदेवजीकृत टीका में लिखा है -"**रागद्वेषोपहतार्तरौद्रपरिणतक्षेत्रपालचडिकादि मिथ्यादेवानां यदाराधनं करोति जीवस्तद्देवमूढत्वं न च ते देवा किमपि फलं प्रयच्छन्ति। कथमिति चेत्? रावणेन रामलक्ष्मण विनाशार्थं बहुरूपिणी विद्या साधिता कौरवैस्तु पांडवनिर्मूलनार्थं कात्यायनी विद्या साधिता कंसेन च नारायणनाशार्थं बह्व्योऽपि साधिताः।" ताभिः कृतं न किमपि रामपांडवनारायणानां। तैस्तु यद्यति मिथ्यादेवता नानुकूलिताः तथापि निर्मल-सम्यक्त्वोपार्जितेन पूर्वकृतपुण्येन सर्वं निर्विघ्नं जातमिति॥**

अर्थात् रागीद्वेषी आर्त्तरौद्र परिणामी क्षेत्रपालादि मिथ्यादेवों की जो जीव आराधना करता है, वह देवमूढ़ है। ये मिथ्यादेव कुछ भी लाभ नहीं पहुँचा पाते। यह कैसे? यह ऐसे कि-रावण ने राम-लक्ष्मण के विनाश के लिये बहुरूपिणी विद्या सिद्ध की, कौरवों ने पांडवों को खतम करने के लिये कात्यायनी विद्या सिद्ध की, और कंस ने श्रीकृष्ण को मारने के बहुत सी विद्याये सिद्ध कीं, किन्तु वे विद्यायें राम-पांडव-श्रीकृष्ण का



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकी। इसके विपरीत राम, पांडव, श्रीकृष्ण ने इन मिथ्या विद्या देवताओं की कोई आराधना नहीं की तो भी उनके निर्मल सम्यक्त्व और पूर्वकृत पुण्य से उनके सर्वकार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो गये।

प्रश्न- तब फिर शुभचन्द्रकृत पांडवपुराण के पर्व २० में अर्जुन द्वारा शासनदेवता की आराधना और उससे सहायता की प्रार्थना का वर्णन कैसे किया गया है ? देखो -

**स्थितस्तत्र च धैर्येण दध्यौ शासनदेवतां।**
**आराधितो मया धर्मो जिनदेवः सुसेवितः॥ ८२॥**
**गुरुश्च यदि प्राकट्यं भज शासनदेवते।**
**इति ध्यायन् जिनं चित्ते स्थितोऽसौ स्थिर मानसः॥ ८३॥**

उत्तर - इन श्लोकों का पूरा अर्थ इस प्रकार है -

''अर्जुन वहाँ (चबूतरे पर) धैर्यपूर्वक बैठ गया और शासनदेवता को इस प्रकार सम्बोधन किया कि अगर मैंने धर्म का आराधन किया हो, अर्हन्त और गुरु की सेवा की हो, तो तू प्रकट हो। फिर स्थिर मन से जिनेन्द्र का ध्यान करने लगा।''

इसमें शासनदेवता की कोई आराधना नहीं बताई है। आराधना तो धर्म की और सेवा अर्हन्त, गुरु की तथा ध्यान जिनेन्द्र का बताया है। अर्जुन ने शासनदेवता से सहायता की भी याचना नहीं की है। आगे के श्लोक ८५-८६ में बताया है कि शासनदेवता ने प्रकट होकर अर्जुन से कहा कि मैं तुम्हारी किंकर हूँ, मेरे लिए जो आदेश हो वह बताओ। इससे शासनदेवता अर्जुन की सेवक सिद्ध होती है, अर्जुन उसका सेवक नहीं।

**क्रमशः**

**महावीर जयंती स्मारिका १९७५**

**प्रकाशक-राजस्थान जैन सभा, जयपुर से साभार**

## कुसंग से दूर रहना

१. योग्य पुरुष कुसंग से डरते हैं, पर क्षुद्र प्रकृति के आदमी दुर्जनों से इस रीति से मिलते-जुलते हैं, मानों वे उनके कुटुम्ब के ही हों।
२. पानी का गुण बदल जाता है, वह जैसी धरती पर बहता है, वैसा ही गुण उसका हो जाता है। उसी प्रकार मनुष्य की जैसी संगति होती है, उसमें वैसे ही गुण आ जाते हैं।
३. आदमी की बुद्धि का सम्बन्ध तो उसके मस्तक से है, पर उसकी प्रतिष्ठा तो उन लोगों पर पूर्ण अवलम्बित है, जिनकी संगति में वह रहता है।
४. मालूम तो ऐसा होता है कि मनुष्य का स्वभाव उसके मन में रहता है, किन्तु वास्तव में उसका निवास स्थान उस गोष्ठी में है, जिनकी कि वह संगति करता है।
५. मन की पवित्रता और कर्मों की पवित्रता आदमी की संगति की पवित्रता पर निर्भर है।
६. पवित्रहृदयवाले पुरुष की संगति उत्तम होगी और जिसकी संगति अच्छी है, वे हर प्रकार से फूलते-फलते हैं।
७. अन्तःकरण की शुद्धता ही मनुष्य के लिये बड़ी सम्पत्ति है और संत-संगति उसे हर प्रकार का गौरव प्रदान करती है।
८. बुद्धिमान् यद्यपि स्वयमेव सर्वगुण सम्पन्न होते हैं, फिर भी वे पवित्र पुरुषों के सुसंग को शक्ति का स्तम्भ समझते हैं।
९. धर्म मनुष्य को स्वर्ग ले जाता है और सत्पुरुषों की संगति उसको धर्माचरण में रत करती है।
१०. अच्छी संगति से बढ़कर आदमी का सहायक और कोई नहीं है। और कोई वस्तु इतनी हानि नहीं पहुँचाती, जितनी कि दुर्जन की संगति।
११. यदि हमारे घर में क्लेश व कलह निर्मूल हो जाएँ, तो समझना चाहिये कि हमें सही गुरु मिलें हैं।
१२. किसी को सुधारने की बजाय अच्छी भावना करें।

**संकलन**

**सुशीला पाटनी**

**मदनगंज-किशनगढ़ ( राज. )**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# संस्कारोन्नयन में विद्वानों का योगदान

डॉ. श्रेयांसकुमार जैन

मानव जीवन में संस्कारों का सर्वाधिक महत्त्व है, उसका शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक परिष्कार के लिए की जाने वाली क्रियाओं को संस्कार संज्ञा दी गई है। संस्कारों से मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण और विकास होता है। जैनाचार्यों ने संस्कार पर विचार करते हुए लिखा है- '**वस्तु स्वभावोऽयं यत् संस्कारः स्मृतिबीजमादाधीत**' वस्तु का स्वभाव ही संस्कार है, जिसको स्मृति का बीज माना गया है। (सि.वि.) शरीरादि की शुचि स्थिर और आत्मीय मानने रूप जो अविद्या/ अज्ञान है, उसके पुनः प्रवृत्ति रूप अभ्यास से संस्कार उत्पन्न होते हैं[१]। मनुष्य के जीवन की संपूर्ण शुभ और अशुभ वृत्ति उसके संस्कारों के अधीन है, जिनमें कुछ पूर्वभव से साथ लाता है और कुछ इसी भव में प्राप्त करता है। आचार्य श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती लिखते हैं-'नरकादि भवों में जहाँ उपदेश का अभाव है, वहाँ पूर्वभव में धारण किए हुए तत्त्वार्थज्ञान के संस्कार के बल से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है'[२] इन अनन्तानुबंधी कषायों के द्वारा जीव में उत्पन्न हुए संस्कार का अनंत भवों में अवस्थान माना गया है।[३] अविद्या के अभ्यास रूप संस्कारों के द्वारा मन स्वाधीन न रहकर विक्षिप्त हो जाता है। वही मन विज्ञान रूप संस्कारों के द्वारा स्वयं ही आत्मस्वरूप में स्थिर हो जाता है।[४] शुद्ध चैतन्य स्वरूप को जानता हुआ भी पूर्व भ्रांति के संस्कारवश पुनरपि भ्रान्ति को प्राप्त होता है।[५] आचार्य शिवार्य पठित ज्ञान के संस्कार आत्मा में निरंतरता को प्राप्त रहते हैं, इसी बात को बतलाते हुए कहते हैं-

**विणएण सुदमधीदं जदिवि पमादेण होदि विस्सरिदं।**
**तमुवट्ठादि परभवे केवलणाणं च आवहदि॥२८६॥**

विनय से पढ़ा हुआ शास्त्र किसी समय प्रमाद से विस्मृत हो जाए तो भी वह अन्य जन्म में स्मरण हो जाता है, संस्कार रहता है और क्रम से केवलज्ञान को प्राप्त कराता है।

संस्कार विषयक इन शास्त्रीय बातों को समाज में पूर्वकाल से ही विद्वानों ने प्रसारित और प्रचारित किया है। वर्तमान में भी उन्हीं द्वारा किया जा रहा है और किया जाएगा। ग्रहण किए हुए संस्कार प्रभाववान होते ही हैं, क्योंकि शब्द ग्रहण के काल में ही संस्कार युक्त किसी पुरुष के उसके (शब्द के वाच्यभूत पदार्थ के) रसादि विषयक प्रत्यय की उत्पत्ति पाई जाती है।[६]

नैतिक एवं चारित्रिक विकास के लिए गृहस्थाचार्य विद्वान् समाज में होना ही चाहिए, क्योंकि गृहस्थाचार्य विद्वानों के बिना सामाजिक, धार्मिक क्रियाएँ यथाविधि न की जाने से सफलीभूत श्रेयस्कारिणी नहीं हो सकतीं। इतिहास के पृष्ठों पर लिखा है कि ३२५ ई. सन् वर्ष पूर्व कुशल राजनीतिज्ञ बहुश्रुत मनीषी चाणक्य की सूझबूझ और सहायता से चन्द्रगुप्त मौर्य ने महाशक्ति नंदवंश के राजा को पराजित कर साम्राज्य हस्तगत किया था। सोमदेव ने भी उल्लेख किया है[७]। यह उदाहरण भौतिक उन्नति का है, इसी प्रकार विद्वान्/ज्ञानी भद्रबाहु श्रुतकेवली के द्वारा दी गई धार्मिक शिक्षा-दीक्षा से शिक्षित दीक्षित हुए सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने विशाल साम्राज्य लक्ष्मी को तृणवत् तुच्छ समझकर उसे त्यागकर जैनधर्म का उच्च महनीय चारित्र धारण किया था।

विद्वानों द्वारा भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति कराने वाले उक्त ऐतिहासिक उदाहरण को जानने के बाद समाज और संस्कृति के उत्थान में विद्वानों द्वारा किए गए योगदान को पुस्तकों द्वारा और वृद्धजनों द्वारा भी जाना जा सकता है। जहाँ पंडित श्री भूरामल जी (आचार्य ज्ञानसागर महाराज) जैसे संत की उपलब्धि हुई, जिनकी साधना और साधक परम्परा ने अपूर्व धर्म प्रभावना की है और कर रही है। वहाँ विद्वत्वर्य पं. श्री फूलचन्द्रजी सिद्धान्ताचार्य, पं. प्रवर श्री कैलाश चन्द्रजैनशास्त्री, पं. श्रीरतनचन्द्रजीमुख्तार, पं. श्री जगन्मोहनलाल जी, पं. श्री मक्खनलाल शास्त्री, पं. श्री हीरालाल जैन, डॉ. हीरालाल जैन, डॉ. लालबहादुर शास्त्री आदि विद्वानों ने जिनागम के भंडार की भी वृद्धि के साथ सैकड़ों विद्वान् तैयार कर समाज को सौंपे, जिनके द्वारा सम्यक् रूप से संस्कारों का बोध कराया जा रहा है और कराया जाएगा। अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रिपरिषद् और अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् दोनों संस्थाओं के विद्वानों द्वारा सतत समाज की सेवा की गई है और संस्कारों का प्रसार-प्रचार किया गया है। पुराणों/शास्त्रों में प्रतिपादित संस्कार विद्वान् ही समझा सकते हैं। जैसे-भगवज्जिनसेनाचार्य ने चारित्र धर्म का क्रमिक व मौलिक निरूपण करने के लिए गर्भान्वय, दीक्षान्वय, कर्त्रन्वय क्रियाओं-संस्कारों का ललित विवेचन किया है[८]। गर्भान्वय की गर्भाधान, प्रीतिसुप्रीति, धृति, मोद, प्रियोद्भव, नामकर्म बहिर्यान, निषद्या, प्राशन, व्युष्टि केशवाय,



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिपिसंख्यान, संग्रह उपनीति, व्रतचर्या, व्रतावरण, विवाह, वर्णलाभ, कुलचर्या, गृहीशिता, प्रशान्ति गृहत्याग, दीक्षान्वय, जिनरूपता, मौनाध्ययनव्रतत्व, तीर्थकृतभावना, गुरुस्थानाभ्युप -गमन, गणोपग्रहण, स्वगुरुस्थान संक्रान्ति, नि:संगत्वात्म भावना, योग से निर्वाण प्राप्ति, योगनिर्वाणसाधन, इन्द्रोपपाद, अभिषेक, विधिदान, सुखोदय, इन्द्रत्याग अवतार, हिरण्योत्कृष्ट जन्मता, मन्दरेन्द्राभिषेक, गुरुपूजोपलम्भन, यौवराज्य स्वराज, चक्रलाभ, दिग्विजय, चक्राभिषेक, साम्राज्य, निष्क्रान्ति, योगसंग्रह, आर्हन्त्य, तद्विहार, योगत्याग, अग्रनिवृत्ति। पुराणसाहित्य में वर्णित इन क्रियाओं की विधि विद्वान् ही समझा सकते हैं। पूर्वकाल में चक्रवर्ती सम्राट आदि विद्वानों, ऋषियों, मुनियों से इन क्रियाओं को समझकर करते रहे हैं।

दीक्षान्वय सम्बन्धी ४८ क्रियाएँ विशेष लाभ पहुँचाने वाली हैं। अवतार, वृत्तलाभ, स्थानलाभ, गणग्रह, पूजाराध्य, पुण्य यज्ञ, दृढ़चर्या, उपयोगिता, इन आठ क्रियाओं के साथ उपनीति नाम गर्भान्वय की चौदहवीं क्रिया से लेकर अग्रनिवृत्ति नाम की तिरेपनवीं क्रिया तक की चालीस क्रियाओं को मिलाकर 48 दीक्षान्वय क्रियाएँ होती हैं। कर्त्रन्वय की सात क्रियाएँ पुण्य करने वाले लोगों को प्राप्त होती हैं। १. सज्जातित्व २. सदगृहित्व ३. पारिव्राज्य ४. सुरेन्द्रता ५. साम्राज्य ६.परमार्हन्त्य ७. परमनिर्वाण, ये सप्त स्थान तीनों लोकों में श्रेष्ठ हैं।

इन क्रियाओं-पूर्वक विद्वान् संस्कारों का प्रसार करने में योगदान देते हैं। संस्कारों को यथाविधि सुसम्पन्न करने के लिए गार्हपत्य, आह्वनीय, दाक्षिणत्याग्नि रूप महाग्नियों की स्थापना करके संस्कारोपयोगी आधान, प्रीति, सुप्रीति, धृति मंत्रों का उच्चारण करके दशांगी धूप आदि सुगंधित द्रव्यों से हवन कराकर विद्वान् पवित्रता/निर्मलता वातावरण बनाते हैं। आर्हत् दर्शन प्रतिकूल प्राणी पीड़ाकारक उच्चाटन, वशीकरण एवं मारण प्रदति मंत्रों का खण्डन करते हैं। तीर्थंकर, गणधर, सामान्यकेवली की दिव्यमूर्तियों का सुसंस्कार सम्पन्न करने वाली महाग्नियों के माध्यम से गृहस्थाचार्य प्रत्येक मांगलिक कार्य को सम्पन्न कराते हैं। देवपूजा, गुरु उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान इन षट्कर्तव्यों का बोध कराते हैं। कृषि, व्यापार आदि न्यायपूर्वक जीविका चलाने का मार्ग बतलाते हैं। गृहस्थ को सदाचरण का पालन करते हुए संसार के प्रत्येक प्राणी के साथ मैत्रीभाव, दीन-दु:खियों के प्रति करुणाभाव, गुणियों के प्रति प्रमोदभाव रखने की शिक्षारूप संस्कार समय-समय पर विद्वानों द्वारा दिए जाते हैं। पर्व के दिनों में उपदेशों और पूजा विधान आदि कराकर संस्कारित करने का उपक्रम विद्वानों द्वारा सतत किया जाता है। जिससे आबाल वृद्ध सत्संस्कार को प्राप्तकर आत्मकल्याण के साथ परकल्याण रूप प्रवृत्ति का बोध प्राप्त करते हैं। इसके अलावा जो अन्य माध्यमों से समाज को संस्कार देते हैं, उनको भी यत्किञ्चित प्रस्तुत किया जा रहा है। आधान आदि क्रियाओं से स्पष्ट है कि कन्याओं की स्थिति पुत्रों के समान ही थी। मनुस्मृति आदि ग्रंथों में षोडश संस्कारों में पुंसवन संस्कार को महत्ता दी गई है, जिससे ज्ञात होता है कि कन्या की स्थिति स्मृतियों में हीन थी क्योंकि पुंसवन संस्कार पुत्र प्राप्ति के लिए ही किया जाता है। माता-पिता की कामना होती है कि गर्भस्थ संतान पुत्र हो।

विद्वानों के द्वारा समाज को समझाया जाता है कि अप्रिय निन्द्य वचनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि खोटे वचनों से हिंसा की प्रेरणा होती है और अनेक प्रकार के दोषों की भी उत्पत्ति है, जैसा कि आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी ने भी कहा है-

**छेदनभेदनमारण कर्षणवाणिज्यचौर्यवचनादि।**
**तत्सावद्यं यस्मात् प्राणिवधाद्याः प्रवर्तन्ते ॥९७॥**
**अरतिकरं भीतिकरं खेदकरं वैरशोककलहकरम्।**
**यदपरमपि परस्य तत्सर्वमप्रियं श्रेयम् ॥९८॥**

**पुरुषार्थसिद्ध्युपाय**

जो वचन-कथन-बोलचाल छेद डालने वाला, मार देने वाला, कर्षण कराने वाला, चोरी कराने वाला, हिंसक व्यापार में लगाने वाला हो, यथा इसे छेद डालो, भेद डालो, घायल कर दो, इसके टुकड़े कर दो, मार डालो, बांध दो रूप हों, हिंसक व्यापार, चोरी आदि के लिए प्रेरक वचन हों, वे पापमय, कषायमय हैं। इनसे हिंसक कार्यों के लिए प्रेरणा मिलती है। जीवों की हिंसा होती है, अत: त्याज्य हैं। जो वचन दूसरों को अरुचिकर हो या अप्रीतिकर हों, जिनवचनों से भय शंका या संदेह उत्पन्न हो, विकल्प उत्पन्न हो, अथवा कलह-लड़ाई झगड़ा हो, जिनसे हृदय संतप्त हो, उन सब वचनों को अप्रिय वचन कहते हैं, जो सर्वथा त्याज्य हैं।

संस्कारहीन वचनों के व्यवहार से निवृत्ति का मार्ग ग्रंथों के बिना मिलना असंभव है और ग्रंथों के वर्ण्य विषय को समाज में फैलाना विद्वानों के बिना असंभव है, क्योंकि शास्त्रीय विषय सर्वजन ग्राह्य नहीं हैं, उन्हें समझने के लिए अध्यवसाय की जरूरत होती है, वह अध्यवसाय विद्वान् करते हैं। शास्त्रों का प्रथमत: स्वयं अध्ययन करते हैं और शास्त्रों से विषय वस्तु ग्रहण कर समाज को समझाते हैं।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बालकों से लेकर वृद्धों तक यही समझाया जाता है कि क्या करना चाहिए क्या नहीं करना चाहिए। व्यर्थ के कार्यों से हिंसा आदि बढ़ती है, अतः निष्कारण कार्यों से सतत बचकर रहना चाहिए।

**पापर्द्धिजयपराजय संगरपरदारगमनचौर्याद्याः।**
**न कदाचनापि चिन्त्याः पापफलं केवलं यस्मात्॥ १४१॥**
**विद्यावाणिज्यमषी कृषिसेवाशिल्पजीविनां पुंसाम्।**
**पापोपदेशदानं कदाचिदपि नैव करणीयम्॥ १४२॥**
**भूखननवृक्षमोटन शाड्बलदलनाम्बुसेचनादीनि।**
**निष्कारणं न कुर्याद्दलफल कुसुमोच्चयानपि च॥ १४३॥**

**पुरुषार्थसिद्ध्युपाय**

पापवर्द्धक बुरे विचार करना, बुरा चिन्तन करना, व्यर्थ विकल्प करना, आर्त्त-रौद्र भाव करना, निष्प्रयोजन (आवश्यकता के बिना या आवश्यकता से अधिक) कार्य करना 'अनर्थदण्ड' (व्यर्थ का अपराध) कहलाता है। ये बुद्धिमान लोगों द्वारा करणीय नहीं है, क्योंकि इनसे पाप का बंध होता है।

आजीविका के लिए विद्या[९]-वाणिज्य-मषी-कृषि-सेवा-शिल्प (कला-व्यापार-मुनीमी खेती-नौकरी-कोई कला) से सम्बन्धित कार्य ही करने चाहिए। लोभ-लालच में आकर हिंसावर्धक आजीविका कभी नहीं करनी चाहिए। पापमय आजीविका न स्वयं को करनी चाहिए न ही दूसरों को कोई हिंसामय आजीविका का उपदेश देना चाहिए।

निष्प्रयोजन पृथ्वी का खोदना, वृक्ष काटना, हरी घास-वनस्पति को काटना-उखाड़ना-छेड़ना, व्यर्थ पानी गिराना, पत्र-फल-फूल आदि का संचय 'अनर्थदण्ड' है, अतः ये सब त्याज्य हैं।

संस्कारों के साथ युद्ध चल रहा है और इस युद्ध में भारतीय समाज पराजित हो रहा है। जहाँ देखो, वहाँ हिंसा का ताण्डव हो रहा है। संस्कारहीनता के मुख्य कारण आतंकवाद, परिग्रहवाद, बढ़ती हुई दुष्प्रवृत्तियों और अश्लीलता आदि हैं। अगर बचपन से ही शास्त्रों में बताए हुए विषयों का ज्ञान हो तो इस अवस्था में अत्याचार और अनाचार के घिनौने कृत्यों में संलिप्तता हो ही नहीं सकती है। हमारे आचार्यों ने बड़े वात्सल्य भाव से जो शिक्षाएँ दी हैं, उन्हें विद्वान् ही समाज में प्रसारित कर सकते हैं। जैसे- आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी की ये शिक्षाएँ बहुत कारगर हैं। इन्हें विद्वान् समाज में पहुँचाकर संस्कारों की सम्पन्नता में महनीय योगदान देते हैं- हिंसा के उपकरणों (साधनों) जैसे- छुरी, कटारी, विष, अग्नि, हल, तलवार, धनुष, बाण आदि दूसरों को गलत उपयोग के लिए नहीं देना चाहिए। स्वयं भी इनका प्रयोग/उपयोग बहुत सावधानीपूर्वक करना चाहिए, जिससे हिंसा न हो। ज्ञानहीन, असत्य, राग-द्वेष को बढ़ाने वाली कथा-कहानियाँ-चर्चाएँ न सुनना चाहिए, न पढ़ना चाहिए, न याद करना चाहिए और न इनकी शिक्षा देनी चाहिए। जुआ सभी अनर्थों की जड़ है। यह निर्लोभ भाव का नाशक है, माया दगाबाजी, छल, कपट का घर है, चोरी और झूठ का अड्डा है, अतएव सज्जनों को दूर से ही छोड़ देना चाहिए।[१०]

उक्त प्रकार की सद्शिक्षा के माध्यम से, देवदर्शन, रात्रि भोजनत्याग, जलगालन, पंचोदुम्बर भक्षणत्याग आदि के महत्त्व को समझकर सूतकपातक काल की शुद्धि के विधान को बताकर, व्रताचरण-संयम मार्ग को सिखलाकर श्रावकधर्म का पूर्ण बोध कराकर विद्वानों द्वारा संस्कारों का यथाविधि बहुसंख्या में प्रचार किया जाता रहे तो समाज की होनहार संतान आदर्श वीर अकलंक, निकलंक की तरह बहुश्रुत विद्वान् तथा समाज और संस्कृति की रक्षा करने में पूर्ण समर्थ होगी। संस्कार सम्पन्न होकर भगवान् महावीर, महात्मा बुद्ध, मर्यादा पुरुषोत्तम राम जैसे आदर्श को प्राप्त करेगी।

**सन्दर्भ**


१. समाधिशतक टीका ३७/२३६/८
२. 'नरकादिभवेषु पूर्वभवश्रुतधारिमतत्वार्थस्य संस्कारबलात् सम्यग्दर्शनप्राप्तिर्भवति' लब्धिसार जी.प्र. ६/४५/४
३. धवला टीका ५/१९-१, २३/४१/१०
४. समाधिशतकम् ३७
५. वही ४५
६. आहितसंस्कारस्य कस्यचिच्छब्दग्रहणकाल एव तद्रसादि प्रत्ययोत्पत्त्युलम्भाच्च॥ धवला ९/४०/४५
७. तथा चानुश्रुयते विष्णुगुप्तानुग्रहादनधिकृतोऽपि किल चन्द्रगुप्तः साम्राज्य मवापेति॥ यशस्तिलक चम्पू।
८. महापुराण ३८/५१ से ६८
९. विद्यावान् पुरुषों लोके म्यति याति कोविदैः।
१०. नारी च तद्वती धत्ते स्त्री सृष्टेरग्रिमं पदम्॥ आदिपुराण॥ १६/९८
११. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय १४४ से १४६



रीडर संस्कृत
दिगम्बर जैन कॉलेज, बड़ौत




Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# भगवती-आराधना में स्त्रियों के लिए भक्तप्रत्याख्यानकाल में नाग्न्यलिङ्ग का विधान नहीं

प्रो. ( डॉ. ) रतनचन्द्र जैन

भगवती-आराधना की निम्नलिखित गाथा में स्त्रियों के द्वारा भक्त-प्रत्याख्यान (सल्लेखना) के समय धारण किये जाने योग्य लिङ्गों का वर्णन किया गया है -

**इत्थीवि य जं लिङ्गं दिट्ठं उस्सग्गियं व इदरं वा।**
**तं तत्थ होदि हु लिङ्गं परित्तमुवधिं करेंतीए॥ ८०॥**

**अनुवाद**-स्त्रियों के भी जो औत्सर्गिक और आपवादिक लिङ्ग आगम में कहे गये हैं, वे ही भक्तप्रत्याख्यान के समय में भी उनके लिङ्ग होते हैं। आर्यिकाओं का एक-साड़ीमात्र-अल्पपरिग्रहात्मक लिङ्ग औत्सर्गिक लिङ्ग है और श्राविकाओं का बहुपरिग्रहात्मक लिङ्ग अपवादलिङ्ग है।

इस अर्थ का समर्थन टीकाकार अपराजितसूरि के अधोलिखित वचनों से होता है-"**स्त्रियोऽपि यल्लिङ्गं दृष्टमागमेऽभिहितम् औत्सर्गिकं तपस्विनीनाम् 'इदरं वा' श्राविकाणां 'तं' तदेव 'तत्थ' भक्तप्रत्याख्याने भवति। लिङ्गं तपस्विनीनां प्राक्तनम्। इतरासां पुंसामिव योज्यम्। यदि महर्द्धिका, लज्जावती, मिथ्यादृष्टिस्वजना च तस्याः प्राक्तनं लिङ्गम्। विविक्ते त्वावसथे उत्सर्गलिङ्गं वा सकल परिग्रहत्यागरूपम्। उत्सर्गलिङ्गं कथं निरूप्यते स्त्रीणामित्यत आह-तद् उत्सर्गलिङ्गं स्त्रीणां भवति 'परित्तं' अल्पं 'उवधिं' परिग्रहं 'करेंतीए' कुर्वत्याः।**" (विजयोदया टीका / भगवती-आराधना गाथा ८०)।

**अनुवाद**-स्त्रियों के भी जो लिङ्ग आगम में बतलाये गये हैं, अर्थात् तपस्विनियों (आर्यिकाओं) का औत्सर्गिक और श्राविकाओं का आपवादिक, वे ही भक्तप्रत्याख्यान में भी होते हैं। तपस्विनियों का लिङ्ग तो पूर्वगृहीत अर्थात् औत्सर्गिक (एक-साड़ीरूप अल्पपरिग्रहात्मक) ही होता है, श्राविकाओं का लिङ्ग पुरुषों के समान समझना चाहिए। अर्थात् श्राविका यदि अतिवैभवसम्पन्न है या लज्जाशील है अथवा उसके परिवारजन विधर्मी हैं, तो अविविक्त (सार्वजनिक) स्थान में उसे पूर्वगृहीत लिङ्ग अर्थात् बहुपरिग्रहात्मक अपवादलिङ्ग ही दिया जाना चाहिए, किन्तु विविक्त (एकान्त) स्थान में सकलपरिग्रहत्यागरूप उत्सर्गलिङ्ग दिया जा सकता है। यहाँ प्रश्न उठता है कि स्त्रियों के लिए सकलपरिग्रहत्यागरूप उत्सर्गलिङ्ग कैसे निरूपित किया जा सकता है? उत्तर यह है कि परिग्रह को अल्प करने से अर्थात् साड़ीमात्र-अल्पपरिग्रह रखने से स्त्रियों का लिङ्ग उत्सर्गलिङ्ग का कहा गया है।

उपर्युक्त गाथा और उसकी इस विजयोदयाटीका में कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि स्त्रियों को भक्तप्रत्याख्यान के समय एकान्तस्थान में मुनिवत् नग्नतारूप उत्सर्गलिङ्ग धारण करना चाहिए। किन्तु विद्वानों, मुनियों एवं आर्यिकाओं में दीर्घकाल से यह धारणा प्रचलित है कि भगवती-आराधना में आर्यिकाओं और श्राविकाओं को भक्तप्रत्याख्यान के समय एकान्त स्थान में मुनिवत् नग्नतारूप उत्सर्गलिङ्ग प्रदान किये जाने का उल्लेख है। यह भ्रान्तधारणा पं. आशाधर जी की भ्रान्तिजनित व्याख्या से जनमी है। उन्होंने भगवती-आराधना पर 'मूलाराधनादर्पण' नामक टीका रची है। उसमें उपर्युक्त गाथा की व्याख्या में उन्होंने लिखा है -

"**औत्सर्गिकं तपस्विनीनां साटकमात्रपरिग्रहेऽपि तत्र ममत्व-परित्यागादुपाचारतो नैर्ग्रन्थ्यव्यवहरणानुसरणात्। इतरम् अपवादिकं श्राविकाणां तथाविधममत्वपरित्यागाभावादुपचारतोऽपि नैर्ग्रन्थ्यव्यवहारानवतारात्। 'तत्थ' तत्र भक्तप्रत्याख्याने सन्यासकाले इत्यर्थः। लिङ्गं तपस्विनीनाम-योग्यस्थाने प्राक्तनम्। इतरासां पुंसामिवेति योज्यम्। इदमत्र तात्पर्यं-तपस्विनी मृत्युकाले योग्ये स्थाने वस्त्रमात्रमपि त्यजति। अन्या तु यदि योग्यं स्थानं लभते। यदि च महर्द्धिका सलज्जा मिथ्यात्वप्रचुरज्ञातिश्च न तदा पुंवद्वस्त्रमपि मुञ्चति। नो चेत् प्राग्लिङ्गेनैव म्रियते। तथा चोक्तं -**

**यदौत्सर्गिकमन्यद्वा लिङ्गं दृष्टं स्त्रियाः श्रुते।**
**पुंवत्तदिष्यते मृत्युकाले स्वल्पीकृतोपधेः॥**"

(मूलाराधना / आश्वास २ / गा. ८१/ पृ. २१०-२११)।

**अनुवाद**-तपस्विनियों (आर्यिकाओं) के साड़ीमात्र का परिग्रह होने पर भी उसमें ममत्व का परित्याग कर देने से उनके उपचार से नैर्ग्रन्थ्य (सकलपरिग्रहत्याग) कहा गया है। अतः उनके लिङ्ग को औत्सर्गिक लिङ्ग कहते हैं। किन्तु श्राविकाएँ अपने वस्त्रादि में ममत्व का परित्याग नहीं करतीं, अतः उनके उपचार से भी नैर्ग्रन्थ्य नहीं कहा जा सकता। इसलिए उनका लिङ्ग अपवादिक लिङ्ग होता है। ये लिङ्ग उनके लिए भक्तप्रत्याख्यान काल अर्थात् संन्यासकाल (सल्लेखनाकाल) में ग्रहण करने योग्य हैं। अभिप्राय यह है कि अयोग्य (अविविक्त = सार्वजनिक) स्थान में तपस्विनियों



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को अपना पूर्वलिङ्ग अर्थात् एकसाड़ीरूप औत्सार्गिकलिङ्ग ही धारण करना चाहिए। अन्य स्त्रियों (श्राविकाओं) का लिङ्ग पुरुषों (श्रावकों) के समान समझना चाहिए। तात्पर्य यह कि तपस्विनी मृत्यु के समय योग्य (विविक्त = एकान्त) स्थान में वस्त्र का भी परित्याग कर देती है। किन्तु श्राविका, यदि योग्य स्थान मिलता है, तो वस्त्र त्यागती है। यदि वह अति वैभवशालिनी है या लज्जालु है अथवा उसके स्वजन प्रचुरमिथ्यादृष्टि हैं, तो वह इसी श्रेणी के श्रावकों के समान वस्त्रत्याग नहीं करती, अपने पूर्व (बहुपरिग्रहात्मक) लिङ्ग से ही मरण करती है। ऐसा कहा भी गया है-

''स्त्री के लिए आगम में जो औत्सर्गिक या आपवादिक लिङ्ग कहा गया है, वह मृत्युकाल में परिग्रह अल्प करनेवाली स्त्री के विषय में पुरुष के समान समझना चाहिए।''

इस व्याख्या में पण्डितजी ने भक्तप्रत्याख्यान के समय आर्यिका और श्राविका के लिए एकान्तस्थान में मुनिवत् नाग्न्यलिङ्ग धारण करने का विधान बतलाया है, किन्तु यह भगवती-आराधना की उक्त गाथा एवं उसकी विजयोदया टीका में प्रतिपादित अर्थ के सर्वथा विरुद्ध है। इसके निम्नलिखित प्रमाण हैं -

**१. आगमोक्त दीक्षालिङ्ग ही भक्तप्रत्याख्यानलिङ्ग**

उक्त गाथा और उसकी विजयोदयाटीका में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि स्त्रियों के लिए जो औत्सर्गिक एवं आपवादिक लिङ्ग आगम में कहे गये हैं, वे ही उनके भक्तप्रत्याख्यानकाल में भी होते हैं। उपर्युक्त दोनों लिङ्ग दीक्षालिङ्ग हैं। स्त्री के लिए कहा गया औत्सर्गिक लिङ्ग आर्यिका का दीक्षालिङ्ग है और अपवादलिङ्ग श्राविका का। ये दोनों क्रमश: उपचारमहाव्रतों और अणुव्रतों की दीक्षा ग्रहण करते समय ही धारण कर लिये जाते हैं। शिवार्य ने स्त्रियों के लिए भक्तप्रत्याख्यानकाल में इन्हीं दीक्षालिङ्गों को ग्राह्य बतलाया है। और यह आगमप्रसिद्ध है कि आर्यिका का दीक्षालिङ्ग एक-साड़ीपरिधान-रूप होता है तथा श्राविका का एकाधिक-वस्त्रपरिधान-रूप। अत: यह स्वत: सिद्ध है कि शिवार्य ने इन्हीं सवस्त्रलिङ्गों को आर्यिका और श्राविका के लिए भक्तप्रत्याख्यानकाल में ग्राह्य बतलाया है।

आगम में मुनिवत् नग्नरूप को न तो आर्यिका का दीक्षा लिङ्ग कहा गया है, न श्राविका का। अत: यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि भगवती-आराधना में आर्यिका और श्राविका के लिए भक्तप्रत्याख्यान के समय एकांत स्थान में मुनिवत् नग्न रूप धारण करने का विधान किया गया है। उक्त गाथा से तो उनके नग्न रूप धारण करने का निषेध होता है।

**२. तदेव लिङ्ग**

विजयोदयाटीका के '**तदेव भक्तप्रत्याख्याने भवति**' (वही लिङ्ग भक्तप्रत्याख्यान में होता है), इस वाक्य में प्रयुक्त 'एव' शब्द अवधारणात्मक (सीमाबंधन करनेवाला) है। अर्थात् वह स्त्रियों के लिए भक्तप्रत्याख्यान में आगमोक्त दीक्षालिङ्ग के अतिरिक्त अन्य लिङ्ग की ग्राह्यता का निषेध करता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भगवती-आराधना में आर्यिका और श्राविका के लिए भक्तप्रत्याख्यान के समय मुनिवत् नाग्न्यलिङ्ग का सर्वथा (एकांत या सार्वजनिक सभी स्थानों में) निषेध किया गया है।

**३. प्राक्तन लिङ्ग**

इसी प्रकार विजयोदया टीका के '**लिङ्गं तपस्विनीनां प्राक्तनम्**' वाक्य में प्रयुक्त '**प्राक्तनम्**' (पूर्वगृहीत) शब्द स्पष्ट करता है कि आर्यिकाएँ जो लिङ्ग भक्तप्रत्याख्यान के पूर्व धारण करती हैं, वही उन्हें भक्तप्रत्याख्यान काल में भी धारण करना चाहिए। आर्यिकाएँ भक्तप्रत्याख्यान के पूर्व एकसाड़ीरूप औत्सर्गिक दीक्षालिङ्ग ही धारण करती हैं, मुनिवत् नाग्न्यलिङ्ग नहीं। अत: 'प्राक्तन' शब्द भी उनके लिए मुनिवत् नाग्न्यलिङ्ग के ग्राह्य होने का निषेध करता है।

**४. आर्यिका के प्रसंग में विविक्त-अविविक्त स्थान का उल्लेख नहीं**

विजयोदया टीका में जैसे भक्तप्रत्याख्यानाभिलाषिणी श्राविकाओं के लिए विविक्त और अविविक्त स्थानों का भेद करके अविविक्त स्थान में प्राक्तन लिङ्ग (पूर्वगृहीत अनेकवस्त्रात्मक अपवादरूप दीक्षालिङ्ग) का तथा विविक्त (एकांत) स्थान में आर्यिकावत् एकसाड़ीरूप अल्प-परिग्रहात्मक औत्सर्गिक -लिङ्ग का विधान किया गया है, वैसे विविक्त और अविविक्त स्थान का भेद आर्यिकाओं के प्रसंग में नहीं किया गया है। अतएव उनके लिए प्राक्तन औत्सर्गिक लिङ्ग के अतिरिक्त अन्य किसी भी लिङ्ग का विकल्प भगवती-आराधना में निर्दिष्ट नहीं है। इससे उनके लिए मुनिवत् नाग्न्यलिङ्ग का विकल्प स्वत: निरस्त हो जाता है।

किन्तु पं. आशाधर जी ने विजयोदयाटीका के '**लिङ्गं तपस्विनीनां प्राक्तनम्**' इस वाक्य में अपनी तरफ से '**लिङ्गं तपस्विनीनामयोग्यस्थाने प्राक्तनम्**' इस प्रकार '**अयोग्य स्थाने**' पद जोड़कर यह अर्थ उद्भावित किया है कि भक्तप्रत्याख्यान के समय आर्यिकाओं को अयोग्य (अविविक्त=सार्वजनिक)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान में तो अपना प्राक्तन (एकसाड़ी-परिधानरूप औत्सर्गिक) लिङ्ग ही धारण करना चाहिए, किन्तु योग्य (विविक्त=एकान्त) स्थान में मुनिवत् नग्नरूप धारण कर लेना चाहिए। इस प्रकार पं. आशाधर जी ने स्वकल्पित, असंगत, आगम-प्रतिकूल व्याख्या से इस भ्रान्त धारणा को जन्म दिया है कि भगवती-आराधना में भक्तप्रत्याख्यान के समय आर्यिकाओं और श्राविकाओं के लिए मुनिवत् नाग्न्यलिङ्ग का विधान किया गया है।

पं. आशाधर जी ने अपने मत के समर्थन में '**यदौत्सर्गिक-मन्यद्वा लिङ्गं दृष्टं स्त्रियाः श्रुते**' इत्यादि श्लोक उद्धृत किया है, पर उससे उनके मत का समर्थन नहीं होता, क्योंकि वह भगवती-आराधना की '**इत्थीविय जं लिङ्गं दिट्ठं उस्सग्गियं इदरं वा**' गाथा का आचार्य अमितगति-कृत संस्कृत पद्यानुवाद है। उसमें भी '**यद् दृष्टं श्रुते**' शब्दों से यह कहा गया है कि स्त्रियों के लिए जो औत्सर्गिक और आपवादिक दीक्षालिङ्ग आगम में निर्धारित किए गए हैं, वे ही उनके लिए मृत्युकाल में भी ग्राह्य होते हैं और यत: आगम में उनके लिए सवस्त्र दीक्षालिङ्ग ही निर्धारित किए गए हैं, अत: उक्त श्लोक में भी उनके लिए भक्तप्रत्याख्यानकाल में सवस्त्रलिङ्ग ही ग्राह्य बतलाया गया है, मुनिवत् नाग्न्यलिङ्ग नहीं।

**५. आर्यिका का अल्पपरिग्रहात्मक लिङ्ग ही उपचार से सकलपरिग्रहत्यागरूप उत्सर्गलिङ्ग**

विजयोदयाटीका में कहा गया है कि श्राविका को भक्तप्रत्याख्यान के समय एकांतस्थान में सकलपरिग्रहत्याग-रूप उत्सर्गलिङ्ग ग्रहण करना चाहिए। संभवत: यहाँ उत्सर्गलिङ्ग के साथ 'सकलपरिग्रह-त्यागरूप' विशेषण देखकर पं. आशाधर जी को यह भ्रम हो गया कि भगवती आराधना में स्त्रियों के लिए एकांतस्थान में मुनिवत् नग्नता-रूप उत्सर्गलिङ्ग ग्रहण करने के लिए कहा गया है। अपराजित सूरि को इस बात का अँदेशा था कि पाठकों को ऐसा भ्रम हो सकता है। अत: उन्होंने उक्त कथन के बाद स्वयं शंका उठाकर यह स्पष्ट कर दिया है कि यहाँ एकसाड़ीमात्र अल्पपरिग्रह को उपचार से सकल परिग्रहत्यागरूप उत्सर्गलिङ्ग कहा गया है। यथा-

"**विविक्ते त्वावसथे उत्सर्गलिङ्गं वा सकलपरिग्रह त्यागरूपम्। उर्त्सलिङ्गं कथं निरूप्यते स्त्रीणामित्यत आह-तदुत्सर्गलिङ्गं स्त्रीणां भवति अल्पं परिग्रहं कुर्वत्याः।**"

अपराजितसूरि के कथन का अभिप्राय यह है कि यद्यपि निश्चयनय से तो वस्त्र का भी त्याग कर देनेवाले मुनि का लिङ्ग उत्सर्गलिङ्ग होता है, तथापि स्त्री के प्रसंग में एक-साड़ी-मात्र रखकर शेष परिग्रह त्याग देनेवाली आर्यिका और श्राविका के अल्पपरिग्रहात्मक लिङ्ग को भी उपचार से उत्सर्गलिङ्ग नाम दिया गया है। उपचार-महाव्रत-धारिणी, उपचारतपस्विनी, उपचारसंयती और उपचारश्रमणी के समान उपचार-उत्सर्गलिङ्ग नाम का व्यवहार युक्तिसंगत भी है। पं. आशाधर जी ने भी यह बात अपनी पूर्वोद्धृत टीका में निम्नलिखित शब्दों में स्वीकार की है-"**औत्सर्गिकं तपस्विनीनां साटकमात्रपरिग्रहेऽपि तत्र ममत्वपरित्यागादुपचारतो नैर्ग्रन्थ्य-व्यवहरणानुसरणात्।**" फिर भी (अपराजित सूरि के स्पष्टीकरण एवं आत्म-स्वीकृति के बाद भी) पंडित जी ने आर्यिका और श्राविका के लिए भक्तप्रत्याख्यानकाल में स्त्रियों के लिए निर्धारित उपचार-उत्सर्ग-लिङ्ग के स्थान में पुरुषों के लिए निर्धारित निश्चय उत्सर्गलिङ्ग ग्राह्य बतलाया है, यह आश्चर्य की बात है। यह तो स्पष्टत: भगवतीआराधना की उक्त गाथा में प्रतिपादित अर्थ के प्रतिकूल है।

**६. आर्यिकाओं के प्रसंग में 'पुंसामिव योज्यम्' निर्देश भी नहीं**

विजयोदयाटीका में जैसे '**इतरासां पुंसामिव योज्यम्**' इस वाक्य के द्वारा भक्तप्रत्याख्यानकाल में श्राविकाओं की लिङ्गव्यवस्था पुरुषों की लिङ्गव्यवस्था के समान समझ लेने का निर्देश किया गया है, वैसे आर्यिकाओं की लिङ्गव्यवस्था को पुरुषों की लिङ्गव्यवस्था के समान समझ लेने का निर्देश नहीं किया गया है। अत: उनके लिए भक्तप्रत्याख्यान के समय एकांतस्थान में मुनिवत् नाग्न्यलिङ्ग ग्राह्य बतलाना अप्रामाणिक प्ररूपण है।

**७. 'पुंसामिव योज्यम्' का अभिप्राय**

भगवती-आराधना की '**उस्सग्गियलिङ्गकदस्स**' (गा. ७६ या ७७), तथा '**आवसधे वा अप्पाउग्गे**' (गा. ७८ या ७९) इन गाथाओं में कहा गया है कि यदि श्रावक महर्द्धिक (अतिवैभवसम्पन्न) है, लज्जालु है अथवा उसके परिवारजन मिथ्यादृष्टि (विधर्मी) हैं, तो उसे भक्तप्रत्याख्यान के समय अविविक्त (सार्वजनिक) स्थान में पूर्वगृहीत सवस्त्र अपवाद-लिङ्ग दिया जाना चाहिए तथा विविक्त (एकांत) स्थान में मुनिवत् नग्नतारूप उत्सर्गलिङ्ग दिया जा सकता है।

अपराजितसूरि ने इन गाथाओं को दृष्टि में रखते हुए '**इत्थीवि य जं लिङ्गं दिट्ठं**' इस पूर्वोद्धृत गाथा की विजयोदया टीका में '**इतरासां पुंसामिव योज्यम्**' यह उपर्युक्त वाक्य लिखा है अर्थात् श्राविकाओं की भक्तप्रत्याख्यानकालिक लिङ्गव्यवस्था पुरुषों (श्रावकों) के लिए उक्त गाथाओं में निर्धारित व्यवस्था के समान समझनी चाहिए। इसका तात्पर्य



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह है कि यदि कोई श्राविका भी महर्द्धिक या लज्जालु है अथवा उसके स्वजन मिथ्यादृष्टि हैं, तो उसे भक्तप्रत्याख्यान के समय सार्वजनिक स्थान में पूर्वगृहीत बहुवस्त्रपरिधान-रूप अपवादलिङ्ग ग्राह्य है, किन्तु एकांतस्थान में वह आर्यिकावत् एकसाड़ीमात्र-परिधानरूप अल्पपरिग्रहात्मक उत्सर्गलिङ्ग ग्रहण कर सकती है। यह अर्थ अपराजितसूरि ने **'इतरासां पुंसामिव योज्यम्'** इस वाक्य के अनन्तर निम्न शब्दों में स्पष्ट कर दिया है-"**यदि महर्द्धिका लज्जावती मिथ्यादृष्टि-स्वजनाश्च तस्याः प्राक्तनं लिङ्गम्। विविक्ते त्वावसथे उत्सर्गलिङ्गं वा सकलपरिग्रहत्यागरूपम्। उत्सर्गलिंङ्गं कथं निरूप्यते स्त्रीणामित्यत आह-तदुत्सर्गलिङ्गं स्त्रीणां भवति अल्पं परिग्रहं कुर्वत्याः।**" इन वाक्यों में अपराजितसूरि ने स्पष्ट कर दिया है कि श्राविका को एकांत स्थान में स्त्रियों के लिए निर्धारित अल्पपरिग्रहात्मक (एकसाड़ी-मात्र-परिधानरूप) उत्सर्गलिङ्ग ग्राह्य है।

किन्तु पं. आशाधर जी ने 'इतरासां पुंसामिव योज्यम्' का अर्थ यह लगा लिया कि भक्तप्रत्याख्यानाभिलाषिणी महर्द्धिक, लज्जालु या मिथ्यादृष्टि स्वजनवाली श्राविका एकांत स्थान में इन्हीं गुणोंवाले श्रावक के समान वस्त्र भी त्याग देती है। (देखिए, उनकी पूर्वोद्धृत टीका)। यह अर्थ भगवती-आराधना की उक्त गाथा और उसकी अपराजितसूरिकृत उपर्युक्त टीका के एकदम विपरीत है।

**८. अमहर्द्धिकादि श्राविकाओं के लिए सर्वत्र उत्सर्गलिङ्ग**

अपराजितसूरि ने कहा है कि जो श्राविका महर्द्धिक, लज्जालु या मिथ्यादृष्टि परिवार की है, उसे सार्वजनिक स्थान में पूर्वगृहीत अपवादलिङ्ग ग्रहण करने की अनुमति है, किन्तु एकांत स्थान में उसे उत्सर्गलिङ्ग ग्रहण करना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि जो श्राविका महर्द्धिक, लज्जालु या मिथ्यादृष्टि-परिवार की नहीं है, उसके लिए सार्वजनिक स्थान में भी उत्सर्गलिङ्ग ग्रहण करने का आदेश है। अब यदि इस उत्सर्गलिङ्ग को मुनिवत् नाग्न्यरूप-उत्सर्गलिङ्ग माना जाए, तो स्त्री के सार्वजनिक स्थान में नग्न होने का प्रसंग आयेगा, जो स्त्री के शीलरक्षणार्थ आवश्यक लज्जारूप धर्म के और लोकमर्यादा के विरुद्ध है, जिनके पालन की आज्ञा आगम में दी गई है-"**गयरोसवेरमायासलज्जामज्जादकिरियाओ।**" (मूलाचार/गा. १८८)।

आगम में स्त्री को सार्वजनिक स्थान में अपने अंगों को सदा आवृत रखने का आदेश है। आचार्य कुन्दकुन्द और आचार्य अमितगति ने कहा है कि स्त्री का गात्र स्वयं संवृत (ढँका हुआ) नहीं होता, इसलिए उसे वस्त्र से आवृत करने की आज्ञा दी गई है-

**'णहि संउडं च गत्तं तम्हा तासिं च संवरणं।।'** (प्र.सा./तात्पर्यवृत्तिगत गाथा ३/१०)।

**'न...... गात्रं च संवृतं तासां संवृतिर्विहिता ततः।।'** (योगसारप्राभृत ८/४७)।

तात्पर्य यह है कि शीलरक्षणार्थ स्त्रीशरीर के कुछ अंग पुरुषों को दृष्टिगोचर नहीं होने चाहिए, किन्तु वे यथाजात अवस्था में दृष्टिगोचर होते हैं, अतः उन्हें वस्त्र से आच्छादित कर अदृष्टिगोचर बनाना आवश्यक है। श्राविका के सार्वजनिक स्थान में नग्न हो जाने पर इस आगमवचन का पालन नहीं हो सकता, अतः अमहर्द्धिक, अलज्जालु (जिसे केवल एकसाड़ी धारण करने में लज्जा का अनुभव नहीं होता) अथवा सम्यग्दृष्टि-परिवार की श्राविका को सार्वजनिक स्थान में जिस उत्सर्गलिङ्ग के ग्रहण का उपदेश है, वह मुनिवत् नग्नतारूप उत्सर्गलिङ्ग नहीं हो सकता, आर्यिकावत् एकवस्त्ररूप उत्सर्गलिङ्ग ही हो सकता है। इससे सिद्ध है कि अपराजितसूरि ने श्राविकाओं के लिए एकांत स्थान में भी आर्यिकावत् एकवस्त्ररूप उत्सर्गलिङ्ग ही ग्राह्य बतलाया है। इस तथ्य से भी सिद्ध है कि पं. आशाधर जी की व्याख्या भगवती-आराधना की उक्त गाथा के अभिप्राय के विरुद्ध है।

**९. युक्तितः भी आगम विरुद्ध**

उपर्युक्त शब्दप्रमाणों से सिद्ध है कि भगवतीआराधना में भक्तप्रत्याख्यान के समय स्त्रियों के लिए एकांत या सार्वजनिक, किसी भी स्थान में मुनिवत् नाग्न्यलिङ्ग ग्रहण करने का उल्लेख नहीं है। उक्त शब्दप्रमाणों से वह आगम विरुद्ध सिद्ध होता है। युक्तितः भी वह आगम विरुद्ध ठहरता है, क्योंकि भक्तप्रत्याख्यान के समय आर्यिका या श्राविका के वस्त्रत्याग से किसी प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। उससे न तो उनके गुणस्थान की वृद्धि होती है, न संवरनिर्जरा की। वह स्त्रियों को मोक्षमार्ग में किसी भी तरह आगे नहीं बढ़ाता। स्त्रीपर्याय में जीव का उत्थान पाँचवें गुणस्थान तक ही हो सकता है और वह साड़ीमात्र-परिग्रह-रूप उत्सर्गलिङ्ग से ही संभव है, उसके अभाव में नहीं। इसके अतिरिक्त संस्तरारूढ़ स्त्री की नग्न अवस्था में मृत्यु होने पर यदि उसके शव को उसी अवस्था में दाहसंस्कार के लिए ले जाया जाता है, तो इससे लज्जास्पद और बीभत्स दृश्य उपस्थित होगा और यदि साड़ी में लपेटकर ले जाया जाता है, तो यह सिद्ध होगा कि वस्त्रत्याग निरर्थक है।

**१०.पं. सदासुखदास जी को अस्वीकार्य**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पं. सदासुखदास जी ने भी उक्त गाथा की स्वरचित टीका में आर्यिकाओं और श्राविकाओं के लिए भक्तप्रत्याख्यान-काल में मुनिवत् नाग्न्यलिङ्ग के विधान का उल्लेख नहीं किया। वे लिखते हैं-"बहुरि अल्पपरिग्रहकू धारती जे स्त्री तिनकै हू औत्सर्गिक लिंग व अपवादलिंग दोऊ प्रकार होय है। तहाँ जो सोलह हस्तप्रमाण एक सुफेद वस्त्र अल्पमोल का तातै पग की एडीसूं मस्तकपर्यन्त सर्व अंगकूं आच्छादन करि अर मयूरपिच्छिका धारण करती स्त्री.... ताकै.... आर्यिका का व्रतरूप औत्सर्गिक लिङ्ग कहिए।.... बहुरि गृह में वासकरि, अणुव्रत धारण करि शील, संयम, संतोष, क्षमादि-रूप रहना, यह स्त्रीनि के अपवादलिंग है। सो संस्तर में दोऊ ही होय हैं। (भगवती आराधना/गाथा 'इत्थीवि य जं लिङ्गं' 83/ प्रका.- विशम्बरदास महावीरप्रसाद जैन दिल्ली)।

इस वक्तव्य में पं. सदासुखदास जी ने भगवती-आराधना के अनुसार भक्तप्रत्याख्यानकाल में स्त्रियों के लिए उपर्युक्त दो ही लिंग बतलाए हैं, मुनिवत् नाग्न्यलिंग नहीं बतलाया। पंडित जी की यह व्याख्या मूल गाथा के अनुरूप है। मूल गाथा में भक्तप्रत्याख्यान के समय एकांत और सार्वजनिक स्थान का भेद किए बिना सभी आर्यिकाओं के लिए उत्सर्गलिङ्ग और सभी श्राविकाओं के लिए अपवादलिङ्ग ग्राह्य बतलाया गया है। उसमें महर्द्धिका आदि श्राविकाओं के लिए एकांतस्थान में उत्सर्गलिङ्ग ग्रहण करने का कथन नहीं है। इसका कथन महर्द्धिक आदि श्रावकों के लिए बतलाई गई विशेष लिंगव्यवस्था का अनुकरण कर टीकाकार अपराजितसूरि ने किया है।

यह अनुसंधान दर्शाता है कि भगवती-आराधना में आर्यिकाओं और श्राविकाओं के लिए भक्तप्रत्याख्यान के समय एकांत स्थान में मुनिवत् नाग्न्यलिङ्ग का विधान होने की भ्रान्त धारणा पं. आशाधर जी की भ्रान्तिजनित व्याख्या से जनमी है और इसका प्रायः सभी उत्तरवर्ती व्याख्याकारों ने अनुसरण किया है। उदाहरणार्थ सन् १९३५ ई. में स्वामी देवेन्द्रकीर्ति दिगम्बर जैन ग्रंथमाला शोलापुर द्वारा प्रकाशित भगवती-आराधना के हिन्दी अर्थकर्त्ता पं. जिनदास पार्श्वनाथ शास्त्री फड़कुले ने तथा सन् १९७८ में जैन संस्कृति संरक्षक संघ शोलापुर एवं सन् १९९० में हीरालाल खुशालचंद दोशी फलटण द्वारा प्रकाशित भगवती-आराधना के अनुवादक सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचंद्र जी शास्त्री ने पं. आशाधर जी का अनुसरण करते हुए 'इत्थीविय जं लिङ्गं दिट्ठं' गाथा के अर्थ में लिखा है कि भक्तप्रत्याख्यान करनेवाली आर्यिका एवं श्राविका को एकांत स्थान में मुनिवत् नग्नरूप धारण करना चाहिए। क्षुल्लक जिनेन्द्रवर्णी ने भी जैनेन्द्र सिद्धान्तकोश (भाग ३/पृ. ४१७) में ऐसा ही उल्लेख किया है।

उपर्युक्त दस प्रमाणों से सिद्ध है कि इन सभी टीकाओं या अनुवादों में प्ररूपित उक्त धारणा भ्रांतिपूर्ण है। भगवती-आराधना में वर्णित उक्त गाथा की समीचीन व्याख्या श्री अपराजितसूरि ने विजयोदयाटीका में की है। उसमें उन्होंने गाथा का यह अर्थ बतलाया है कि भक्तप्रत्याख्यानकाल में आर्यिका को एकांत या सार्वजनिक, दोनों स्थानों में वही साड़ीमात्र-परिग्रहरूप उत्सर्गलिङ्ग धारण करना चाहिए, जो वे भक्तप्रत्याख्यान के पूर्व धारण करती हैं तथा जो श्राविकाएँ अतिवैभवसम्पन्न, लज्जालु अथवा मिथ्यादृष्टि परिवार की हैं, वे सार्वजनिक स्थान में तो अपना पूर्वगृहीत अनेकवस्त्रात्मक अपवादलिंग ही ग्रहण करें, किन्तु एकांतस्थान उपलब्ध हो, तो आर्यिकावत् एकवस्त्ररूप उत्सर्गलिङ्ग धारण करें। अन्य श्राविकाओं को दोनों स्थानों में आर्यिकावत् उत्सर्गलिंग ही ग्रहण करना चाहिए।

ए/२, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- ४६२०३९, म.प्र.

## आचार्य विद्यासागर वचनामृत

- ज्ञानवैराग्य शक्ति ऐसी शक्ति है जो किसी दूकान पर नहीं मिलती। वह गुरुकृपा एवं साधना से मिलती है।
- वैराग्य में रहकर श्रमण अपना जीवन व्यतीत करते हैं, वे जंगल में भवन की अपेक्षा लाख गुना आनन्द का अनुभव करते हैं।
- वैराग्य और विवेक का बढ़ना आत्म विकास का कारण है।
- जब हमें आत्मतत्त्व की प्राप्ति की रुचि उत्पन्न हो जाती तब अनंत संसार सागर का नाश हो जाता है।
- सबसे बड़ा अध्यात्म है दूसरे के स्वामी बनने का प्रयास मत करो।

**'सर्वोदयादि पंचशतकावली व स्तुति-सरोज संग्रह ' से साभार**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# जैन पाठशाला : आवश्यकता और शिक्षण पद्धति

डॉ. प्रेमचंद जैन

जैन पाठशाला जैनत्व को अक्षुण्ण बनाए रखने, उसका पोषण एवं संवर्द्धन करने का सशक्त माध्यम है। यहाँ जैनदर्शन,जैन सिद्धांतों, परम्पराओं, श्रावकोचित आचरण आदि की सैद्धांतिक एवं प्रायोगिक शिक्षा दी जाती है।

अपनी संस्कृति को विषम परिस्थितियों में भी अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए पाठशालाएँ अपरिहार्य हैं क्योंकि जैन पाठशाला एक ऐसा शिक्षा केन्द्र है, जहाँ जैनदर्शन एवं उसके मूलभूत सिद्धांतों की शिक्षा दी जाती है। जीवनयापन केन्द्रित शिक्षा संस्थाओं से अलग, जैन पाठशाला संस्कार निर्माण की महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। यद्यपि शिक्षा की परिभाषा में बालक के सर्वांगीण विकास की चर्चा की जाती है। जिसमें शिक्षा के साथ-साथ बालक के सामाजिक, शारीरिक, नैतिक, नागरिक, सांस्कृतिक, मानसिक आदि के विकास समाहित हैं, किन्तु यदि वर्तमान सामान्य लौकिक शालाओं का सर्वेक्षण किया जावे तो वहाँ मात्र जानकारी दी जाती है, ज्ञान या शिक्षा नहीं।

### पाठशाला मस्तिष्क परिशोधन का साधन

वर्तमान में टी०वी० सीरियल, सिनेमा, यूथ क्लब, सायबर कैफे, अश्लील इन्टरनेट आदि की भरमार है। जहाँ बालक और युवा-युवतियाँ आकर्षित होकर नैतिक आचार विचार से पतनोन्मुख हो रहे हैं। जैन बालक, युवा एवं युवतियाँ इससे अछूते नहीं हैं। इसका मूल कारण बचपन में जैन संस्कारों का अभाव है। यदि लौकिक शिक्षा के साथ-साथ जैनदर्शन के मूल सिद्धांतों /परम्पराओं का भी शिक्षण मिले तो बालकों को भटकने से बचाया जा सकता है। जैनदर्शन का मात्र सैद्धांतिक ज्ञान या जानकारी देना जैन पाठशाला का उद्देश्य नहीं है अपितु उन्हें संस्कारवान् बनाना भी महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। वर्तमान में लौकिक शिक्षा के लिये अधिकांश जैन छात्र प्राय: अंग्रेजी माध्यम के कान्वेंट स्कूलों में पढ़ते हैं जहाँ के वातावरण का दुष्प्रभाव उनके आचार-विचार पर पड़ता है। अत: जैन पाठशाला ऐसे बालक बालिकाओं के लिये (मस्तिष्क परिशोधन) का कार्य करती है। यहाँ उन्हें व्यसनों, हिंसा आदि पाँच पापों, रात्रिभोजन से होने वाली हानियों से परिचित कराती है। उनमें विनयशीलता, देव, शास्त्र, गुरु के प्रति श्रद्धा, देवपूजा आदि की प्रायोगिक शिक्षा दी जाती है।

मनोविज्ञान के अनुसार बालक का मस्तिष्क एक कोरी स्लेट के समान है, जिस पर जो चाहो लिख लो। एक शिक्षा मनोविज्ञानी का कथन था कि मुझे ५० या १०० बालक दे दीजिये और मेरी अपनी दुनियाँ, मैं जिसे चाहूंगा उसे इंजीनियर, डॉक्टर, वैज्ञानिक, चोर, डाकू या हत्यारा बना दूंगा। तात्पर्य यह है कि बचपन के संस्कार ही बालक के भावी व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक या बाधक होते हैं। अत: पाठशालाओं के माध्यम से उनका मस्तिष्क परिशोधन जरूरी है ताकि वे जैन कुलाचार अनुरूप आचरणवान बनें।

### पाठशाला मानसिक रोग की औषधि

प्राचीन यूनानी विचारक प्लेटो के अनुसार, 'शिक्षा मानसिक रोगों की मानसिक औषधि है।' प्लेटो की उक्त उक्ति वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में शत प्रतिशत सत्य है। आज अनेक नई-नई कुरीतियों से युवा युवतियाँ ग्रसित होते जा रहे हैं। पाश्चात्य सभ्यता और टी०वी० का अन्धानुकरण करके युवक-युवतियाँ ऐसे वस्त्र पहनने लगे हैं, जिन्हें देखकर सभ्य एवं सज्जन समाज शर्मसार हो जाता है। जयजिनेन्द्र के स्थान पर 'हाय-हैलो' संबोधन का रिवाज बढ़ता ही जा रहा है। घरों में बालक-बालिकाओं के कक्षों में परमपूज्य आचार्यश्री, मुनियों आदि के चित्रों के स्थान पर क्रिकेट खिलाड़ियों, अभिनेता, अभिनेत्रियों के चित्र लगे रहते हैं। बड़ी संख्या में युवक-युवतियाँ धूम्रपान, गुटखा आदि की लत के शिकार भी हो रहे हैं। अश्लील गाने व अश्लील सी०डी० देखने सुनने का रिवाज भी चल पड़ा है। पाठशालाएँ इस प्रकार की अनेक कुरीतियों के दुष्परिणामों से परिचित कराकर उन्हें दूर करने का सफल माध्यम है। ये सब मानसिक रोग हैं जिनकी औषधि समुचित शिक्षा ही है, जो पाठशाला में ही संभव है, लौकिक शिक्षा संस्थानों में विद्यार्थी को बुद्धिमान् तो बनाया जा सकता है लेकिन विवेकवान तो पाठशाला ही बनायेगी।

### पाठशाला : अशुद्धियों का परिमार्जन

वर्तमान में पाठशाला की आवश्यकता एक अन्य दृष्टि से भी है। आज भी जैन धर्मानुयायी अपने धर्म, देव, शास्त्र, गुरु के प्रति असीम श्रद्धा रखते हैं किन्तु ज्ञान के अभाव में उनकी ये समस्त क्रियायें रूढ़िवत हो गई हैं। पूजा करते हैं किन्तु पूजा का अर्थ बोध का अभाव है। अधिकांश प्रौढ़ भी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूजा का सही उच्चारण नहीं करते हैं। उदाहरणार्थ विनयपाठ में 'वीतराग भेंटयो अबै, मेंटो राग कुटेव' के स्थान पर 'वीतराग मेंटो अबै, भेंट्यो, राग कुटेव' पढ़ते हैं। जिससे अर्थ का अनर्थ होता है।

अशुद्धियों की तरफ ध्यान दिलाने पर वे एक दो बार ही सही पढ़ते हैं किन्तु निरन्तर पूर्व अभ्यास के कारण पुन: अशुद्ध ही पढ़ते रहते हैं। पाठशाला इस प्रकार की अशुद्धियों के परिमार्जन का उपयुक्त स्थान है। कम से कम अगली पीढ़ी तो इस प्रकार की सामान्य अशुद्धियों की आदत से मुक्त होगी क्योंकि पाठशाला में सप्ताह में कम से कम एक बार सभी छात्र/छात्राएँ शिक्षक एवं शिक्षिकाओं के मार्गदर्शन में पूजा करते हैं, जहाँ अशुद्ध उच्चारण की आदत ही नहीं बनती।

**पाठशाला : मिथ्यात्व से बचाव**

जैनदर्शन में निदान बंध बहुत बड़ा दोष माना गया है। किन्तु सामान्यत: लोग इस रोग से ग्रस्त हैं। हमारा अमुक काम हो जाएगा तो हम अमुक विधान करेंगे, तीर्थयात्रा करेंगे, दान देंगे, व्रत करेंगे आदि। पाठशाला की शिक्षा में इस दोष के प्रति सजग रहने की शिक्षा दी जाती है। क्योंकि छात्र-छात्राएँ परीक्षा में उत्तीर्ण होने की मनोतियाँ मनाते हैं, जिससे निदानबंध होता है। इसीप्रकार अपने विभिन्न कार्यों की सिद्धि के लिये अन्य देवी-देवताओं की पूजा अर्चना एवं व्रत रखने की प्रथा भी सामान्य है। वर्षों से मंदिर में नित्य पूजा करने वाले श्रावकों को अन्य देवी-देवताओं के समक्ष नत मस्तक एवं हाथ जोड़ने की मुद्रा में देखा जा सकता है। अनेक जैनतीर्थ स्थानों में अन्य देवी-देवताओं के भी मंदिर मठ हैं, लोग दोनों स्थानों पर जाकर अपनी श्रद्धा भक्ति प्रकट कर आराधना करते हैं। पाप क्षीण होने के लिए पवित्र नदियों में डुबकी लगाते हैं। कुछ लोग स्वयं प्रसाद न चढ़ाकर अन्य मतावलंबियों के हाथों से अपनी ओर से प्रसाद चढ़वाते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि कृत, कारित, अनुमोदना तीनों का एक ही फल है।

इन सब अन्यथा मान्यताओं के परिमार्जन का स्थान पाठशाला है, जहाँ शुद्ध दिग्दर्शन से छात्र-छात्राओं को अवगत कराया जाता है।

**पाठशाला : ज्ञान एवं क्रिया में एकरूपता**

केवल ज्ञानार्जन ही नहीं अपितु पाठशालाओं में जैन संस्कृति, अनुरूप परम्पराओं की प्रायोगिक शिक्षा दी जाती है। वाद-विवाद, प्रश्न मंच, भाषण प्रतियोगिता, भजन एवं अन्य प्रतियोगिताएँ, लघु नाटिकाएँ, वार्तालाप आदि के आयोजन समय-समय पर होते रहते हैं। जैनपर्व समारोह पूर्वक मनाये जाते हैं। प्रसिद्ध जैनकथानकों के अनुरूप झाकियां भी सुसज्जित की जाती हैं, जिनके माध्यम से छात्र-छात्रायें करके सीखते हैं। सामूहिक कार्य करने से उनमें सामूहिक उत्तरदायित्व एवं सामाजिकता की भावना का विकास होता है। मात्र दर्शन, ज्ञान की सैद्धांतिक शिक्षा जहाँ एक ओर नीरस है तो दूसरी ओर कार्यकारी भी नहीं है। छात्र छात्रायें जो सैद्धांतिक ज्ञान अर्जित करते हैं, उन्हें अपने व्यवहारिक जीवन में अपनाने को भी प्रेरित किया जाता है। पाठशालाओं में प्रतिदिन छात्र कुछ न कुछ नियम लेते हैं, जिसका वे पालन करते हैं। इस तरह संयम का पहला पाठ पढ़ते हैं। नियमित पाठशाला जाने वाले छात्र और मात्र लौकिक शिक्षा के संस्थानों में पढ़ने वाले छात्रों के आचार-विचार, चारित्रिक दृढ़ता और ज्ञान की समझ उनके व्यवहार में दिखाई देती है।

संक्षेप में मात्र ज्ञान या जानकारी एकत्रित करने वाले की यात्रा मात्र कागज की नाव में बैठकर भव-पार कर लेने के प्रयास जैसी है। उसकी समस्त जानकारियाँ चाहे वो सही हों या गलत, परिग्रह मात्र ही हैं, क्योंकि वे उसके वैयक्तिक जीवन की अंग नहीं बन पाई हैं। अच्छे-अच्छे विद्वान् पंडितों को होटल में बैठकर चाय पीते एवं समोसे खाते देखा गया है। पाठशालाओं में जैनकुलाचार की व्यवहारिक शिक्षा दी जाती है, भले ही वे एकदम होटल, आलू आदि का त्याग न कर पाये पर संस्कार तो बने रहते हैं और जब उन्हें ऐसे समय में संतों, मुनियों का समागम मिल जाता है तो वे आलू आदि अभक्ष्य पदार्थों का त्याग करने, नित्य देवदर्शन करने, पूजा करने, रात्रिभोजन त्याग करने में नहीं हिचकते।

**अब प्रश्न उठता है कि बालक-बालिकाओं को पाठशाला प्रवेश के लिये किस प्रकार आकर्षित करें एवं पढ़ाएं। इस सम्बन्ध में मेरे निम्नलिखित सुझाव हैं :**

१. धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ लौकिक विषयों के अध्यापन की व्यवस्था सामान्यतया छात्र-छात्राएँ अंग्रेजी एवं गणित विषयों में कठिनाई का अनुभव करते हैं और इन विषयों की ट्यूशन करते हैं। परिणामत: उन्हें पाठशाला आने का समय नहीं मि  लता। यदि हम पाठशाला में भी इन दोनों विषयों के अध्यापन की व्यवस्था कर दें या कम से कम सप्ताह में दो दिन इनके लिये नियत कर दें तो छात्र पाठशाला प्रवेश के प्रति आकर्षित होंगे। समाज में ही ऐसे युवक-युवती मिल जायेंगे, जो इन विषयों का शिक्षण नि:शुल्क



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

या सशुल्क कर सकते हैं, आवश्यकता है उन्हें सम्मानपूर्वक आमंत्रित करने की। यह सुविधा उन्हीं छात्रों को मिले जो पाठशाला के नियमित छात्र हैं।

२. कम से कम प्रतिमाह समाज का एक सार्वजनिक समारोह आयोजित कर पाठशाला के छात्र-छात्राओं की विभिन्न प्रतियोगिताएँ करायें एवं उन्हें आकर्षक पुरस्कारों से पुरस्कृत करें ताकि अन्य छात्र इस ओर आकर्षित हों।

३. छात्र-छात्राएँ प्रत्येक रविवार को मंदिर जी में सामूहिक पूजन करते हैं। पूजन के उपरान्त उन्हें कुछ न कुछ मिठाई, फल आदि वितरित किये जाते हैं। गंजबासौदा में यह प्रयोग सफल रहा है। अन्य स्थानों पर भी इसे अपनाया जा सकता है। इसके लिये समाज में ही प्रायोजक मिल जाते हैं।

४. पाठशालाएँ सामान्यतया रात्रि में लगती हैं। अत: छात्रों को लाने ले जाने के लिये कुछ स्वयंसेवकों की व्यवस्था प्रयास पूर्वक की जा सकती है। मुहल्लेवार दो, चार स्वयं सेवक या पाठशाला के ही कुछ युवकों को इस ओर प्रेरित किया जाना चाहिये।

## पाठशाला की शिक्षण पद्धति में सुधार

पाठशाला की विषयवस्तु को रोचक बनाने के लिए अध्यापन की कुछ नवीन विधियों को अपनाना अभीष्ट होगा।

**१. कथा-कहानी विधि :** प्रथमानुयोग के कथानकों के माध्यम से हिंसा, झूठ, चोरी आदि पापों एवं अहिंसा, सत्य, अचौर्य आदि के सारभूत तत्त्व समझाए जा सकते हैं। जैनदर्शन की अहिंसा मात्र दूसरों का घात करने या उन्हें कष्ट पहुँचाने तक ही सीमित नहीं है, अपितु मन में हिंसा आदि के भाव मात्र भाने मात्र से वे हिंसा आदि पापों की श्रेणी में आ जाते हैं। इस तथ्य को पौराणिक आख्यानों के माध्यम से समझाया जा सकता है। मछली पकड़ने हेतु जाल फैलाने वाले धीवर या स्वयंभूरमण समुद्र के राघव महामत्स्य एवं उनके कान में रहने वाले तंदुलमत्स्य के आख्यान से इसे भलीभांति स्पष्ट किया जा सकता है।

**२. चित्र/चार्ट प्रदर्शन विधि :** जैनदर्शन के मूल सिद्धांतों को चित्रों के माध्यम से भी बालक बालिकाओं को हृदयंगम करवाया जा सकता है। जैसे नरकों के दु:खों के चित्र, लेश्यादर्शन, त्रिलोकदर्शन, अढ़ाईद्वीप का नक्शा, षट्द्रव्य आदि। इसके लिये बड़े-बड़े चार्ट चा चित्र बनवाये जाने चाहिए।

**३. उदाहरणों द्वारा :** कोई भी विषय उदाहरणों द्वारा शीघ्र स्पष्ट होता है। जैसे आठ कर्मों का क्या कार्य है, इसे उदाहरणों से स्पष्ट किया गया है। उदाहरणार्थ ज्ञानावरण-ढकने का काम करता है, दर्शनावरण पहरेदार का काम करता है आदि। इनके चित्र भी बनाये जा सकते हैं।

बालि महाराज ने रावण के सन्मुख नत मस्तक होने के स्थान पर अपने भाई सुग्रीव को राज्य देकर दिगम्बरी दीक्षा लेना ठीक समझा ताकि अपने व्रत के पालन में दोष न लगे। बाहुबली ने भरत के सामने झुकने से अच्छा राज्य त्यागना व दिगम्बरी दीक्षा लेने को ठीक समझा। सच्चे श्रावक देव, शास्त्र, गुरु के सन्मुख ही नतमस्तक होते हैं, अन्यों के प्रति नहीं। आशय यह है कि दर्शन और सिद्धांतों को मात्र रटने को अधिक प्रोत्साहित न किया जावे। प्राय: जैन पाठशालाओं के छात्र-छात्रा अनेक जैन सिद्धांतों या तत्त्वों आदि को रट तो लेते हैं पर उनकी व्याख्या नहीं कर पाते। अत: उदाहरणों के माध्यम से सिद्धांतों की अवधारणा को हृदयंगम कराया जाना चाहिये।

**४. प्रश्नोत्तर प्रणाली :** शिक्षाशास्त्री और मनोवैज्ञानियों ने अच्छे शिक्षक के छ: मित्र बताये हैं, जैसे-क्यों, कब, कैसे, कितने, कहाँ, किन्होंने। इन छ: प्रश्नों के माध्यम से किसी भी विषय वस्तु को अच्छे ढ़ंग से पढ़ाया जा सकता है एवं उन्हें विषय हृदयंगम हुआ अथवा नहीं, इसका मूल्यांकन भी किया जा सकता है।

**५. व्यक्तिगत विभिन्नता को ध्यान में रखकर शिक्षण कार्य किया जाना :** कक्षा में उपस्थित सभी बालक-बालिकाओं का मानसिक स्तर एक जैसा नहीं होता-कुछ कुशाग्र बुद्धि होते हैं, जो एक-दो बार में ही विषय को अच्छी तरह समझ लेते हैं, कुछ औसत दर्जे के तथा कुछ मंद बुद्धि भी हो सकते हैं। अत: उनको समझ कर उन पर व्यक्तिगत ध्यान देना आवश्यक है। आधुनिक शिक्षण अवधारणा के अनुसार अच्छा शिक्षक मात्र पढ़ाता नहीं है, अपितु स्वयं बालक को पढ़ता है और उसकी मानसिक योग्यता, रुचि एवं सामर्थ्य के अनुसार उन्हें विषय ग्रहण हेतु प्रेरित करता है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिये।

**६. शिक्षक-शिक्षिकायें स्वयं आदर्श श्रावकोचित आचार रखें :** यह एक अत्यंत आवश्यक बिंदु है क्योंकि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ६ से १४-१५ वर्ष तक के बालक/बालिकाएँ अपने शिक्षक/गुरुजनों को आदर्श मानकर उनका अनुकरण करते हैं व उन जैसा बनना चाहते हैं। अत: शिक्षक-शिक्षिकाओं में चारित्रिक दृढ़ता होनी चाहिये। समाज के


Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संरक्षक वर्ग शिक्षक-शिक्षिकाओं का चयन इस तथ्य को ध्यान में रखकर करें। सती मैनासुंदरी का आख्यान पढ़ाने वाली शिक्षिका या शिक्षक यदि स्वयं प्रेम विवाह कर ले तो उसका क्या प्रभाव पढ़ेगा, यह एक विचारणीय प्रश्न है।

७. **कम्प्यूटर द्वारा :** आजकल कम्प्यूटर भी शिक्षा का महत्त्वपूर्ण साधन है। इन्टरनेट पर कई जैन वेबसाइट्स हैं, जिनसे तीर्थक्षेत्र सहित जैनदर्शन की महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ मिलती हैं। जिससे छात्रों की रुचि बढ़ती है। इनकी व्यवस्था की जानी चाहिये।

**८. अन्य आधुनिक शैक्षणिक उपकरणों का प्रयोग :** ओवरहेड प्रोजेक्टर, स्लाइड प्रोजेक्टर, एल.सी.डी. प्रोजेक्टर आदि-आदि, छात्र-छात्राएँ इन आधुनिक उपकरणों की ओर आकर्षित भी होते हैं तथा शिक्षक/शिक्षिकायें इनके माध्यम से विषय को इतना सरल बना सकते हैं कि छात्र-छात्राएँ उन्हें सरलता से हृदयंगम कर लेते हैं। शिक्षक स्वयं स्लाइड्स तैयार कर सकते हैं या चित्रकार से करवा सकते हैं। प्रोजेक्टरों के माध्यम से परदे पर स्लाइड्स या ट्रान्सपेरेन्सी बड़े दिखते हैं और शिक्षक इनके भेद-प्रभेद अच्छी तरह समझा सकते हैं। किसी भी विषय के भेद-प्रभेद समझाने में एल.सी.डी. प्रोजेक्टर बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। समाज के सम्पन्न महानुभावों को प्रेरित कर इन आधुनिक उपकरणों की व्यवस्था पाठशालाओं में करवायी जाना चाहिये।

उपर्युक्त और इसी प्रकार के अन्य उपायों से मैं समझता हूँ कि पाठशाला की शिक्षा प्रभावी सिद्ध होगी और यह बालक बालिकाओं को आकर्षित भी करेगी।

**निदेशक, जवाहरलाल नेहरू स्मृति महाविद्यालय,**
**गंजबासौदा**

## भगवान् पुष्पदन्त जी

जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्र की काकंदी नगरी में इक्ष्वाकुवंशी काश्यपगोत्री सुग्रीव नाम के राजा राज्य करते थे। जयरामा उनकी पटरानी थी। मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा के दिन उस महादेवी ने प्राणत स्वर्ग से अवतरित इन्द्र को तीर्थंकर सुत के रूप में जन्म दिया। चन्द्रप्रभ भगवान् के बाद जब नब्बे करोड़ सागर का अन्तर बीत चुका तब पुष्पदन्त भगवान् का जन्म हुआ था। उनकी आयु भी इसी अन्तर में शामिल थी। दो लाख पूर्व की उनकी आयु थी, सौ धनुष ऊँचा शरीर था। पचास हजार पूर्व तक उन्होंने कुमार अवस्था के सुख प्राप्त किये थे। तदनन्तर उनके माता-पिता ने अनेक राज कन्याओं से उनका विवाह सम्पन्न कर उन्हें राजपद प्रदान किया। इस प्रकार राज्य करते हुए जब उनके राज्य काल के पचास हजार पूर्व और अट्ठाईस पूर्वांग बीत गये तब वे एक दिन दिशाओं का अवलोकन कर रहे थे। उसी समय उल्कापात देखकर उन्हें आत्मज्ञान प्रकट हो गया। जिससे उन्होंने अपने सुमति नामक पुत्र को राज्य देकर मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा के दिन पुष्पक वन में सायंकाल के समय एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा धारण कर ली। वे पारणा के लिये शैलपुर नामक नगर में प्रविष्ट हुए। वहाँ सुवर्ण के समान कान्ति वाले पुष्पमित्र राजा ने उन्हें आहार दान देकर पंचाश्चर्य प्राप्त किये। इस प्रकार छद्मस्थ अवस्था में तपस्या करते हुए उनके चार वर्ष बीत गये। तदनन्तर उसी दीक्षा वन में बेला का नियम लेकर वे नागवृक्ष के नीचे स्थित हुए और कार्तिक शुक्ल द्वितीया के दिन सायंकाल के समय घातिया कर्मों को नष्ट कर केवलज्ञान प्राप्त किया। धनपति कुबेर ने उनके अचिन्त्य वैभव स्वरूप समवशरण की रचना की, भगवान् के समवशरण में दो लाख मुनि, तीन लाख अस्सी हजार आर्यिकायें, दो लाख श्रावक, पाँच लाख श्राविकायें, असंख्यात देव-देवियाँ और संख्यात तिर्यंच थे। इस तरह बारह सभाओं से पूजित भगवान् पुष्पदन्त आर्य देशों में विहार कर धर्मोपदेश देते हुए सम्मेदशिखर पर पहुँचे और योग निरोध कर भाद्र शुक्ल अष्टमी के दिन सायंकाल के समय एक हजार मुनियों के साथ निर्वाण को प्राप्त किया।

**मुनि श्री समता सागर जी कृत 'शलाका पुरुष' से साभार**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण संस्कृति के उन्नायक

# पं. कैलाशचंद्र जी एवं स्याद्वाद महाविद्यालय

डॉ. श्रीमती रमा जैन

स्याद्वाद महाविद्यालय जैसी गौरवशाली संस्था का जन्म एक रुपये के महादान से हुआ था। अध्यात्मप्रेमी ज्ञानपिपासु पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी जी के जीवन में एक ऐसी घटना घटी :- जब वे युवावस्था में संस्कृत के अध्ययन हेतु काशी पहुँचे तब एक विद्वान् 'नैयायिक जीवनाथ शास्त्री' की फटकार सुनकर तिलमिला गए। उनका रोम-रोम कराह उठा, अंतरात्मा में हाहाकार मच गया। उन्होंने प्रतिज्ञा की जैसे भी हो बनारस में संस्कृत विद्यालय खुलकर ही रहेगा। उस समय वर्णीजी ने वटवृक्ष के नन्हें से बीज की तरह एक रुपये का झम्मनलाल से दान प्राप्त किया। उस रुपये के चौंसठ कार्ड खरीदकर दूर-दूर तक अपनी व्यथा लिखकर भेज दी। इन्हीं पत्रों के माध्यम से स्याद्वाद पाठशाला का विद्याकल्पतरू स्थापित करके ही वर्णीजी ने चैन की सांस ली। भयंकर बाधाओं को सहकर भी उन्होंने अजातशत्रु बनकर समाज के अज्ञान अंधकार को दूर करने का असाधारण कार्य कर दिखाया और बहा दी ज्ञानगंगा भावी पीढ़ी के लिए। मूर्धन्य विद्वान् कवि श्री नीरज जी ने उस समय की काशी की स्थिति का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है:-

**उस दिन हुई सगर्वा निज में पतित पावनी काशी,**
**जिस दिन 'भागीरथ' गणेश ने स्वर्गों को ललकारा।**
**गंगा के तट पर आ छोड़ी स्याद्वाद की धारा॥**

प्रसिद्ध जैनकवि सुधेश नागौद ने इस विद्यालय की गरिमा के स्वागत में लिखा था:-

**तुम ज्ञान देवता के मंदिर, तुम सरस्वती के पुण्य गेह।**
**तुम पंचम युग के समवशरण तुम भारत के अभिनव विदेह॥**

पण्डित कैलाशचंद्र शास्त्री ने इस स्याद्वाद पाठशाला के विषय में लिखा था- इसमें संदेह नहीं, कि स्याद्वाद महाविद्यालय काशी का इतिहास एक तरह से जैन समाज की शैक्षणिक प्रगति का इतिहास है। इस विद्यालय ने इन पचास वर्षों में विविध विषयों के हजारों विद्वानों को उत्पन्न किया है। जो काम सैकड़ों विद्यालय मिलकर नहीं कर सकते थे, वह काम एक अकेले स्याद्वाद महाविद्यालय ने इन पचास वर्षों में कर दिखाया। महापुरुषों का व्यक्तित्व कालजयी होता है, उसे न काल की छेनी से काटा जा सकता है, और न समय की राख उसे ढ़क सकती है। पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी जी द्वारा आरोपित विद्याकल्पतरू के पौधे को सन् १९२३ से पं. कैलाशचंदजी ने माली बनकर सींचा उसकी रक्षा की और उसे वटवृक्ष का रूप प्रदान कर दिया। अस्वस्थ होने के कारण पंडित जी ने तीन-चार वर्ष का अवकाश ले लिया, पुन: सन् १९२७ से समाज के आग्रह पर प्रधानाचार्य का पद ग्रहण किया तथा छात्रों की चेतना के कण-कण में ज्ञान रश्मियों का प्रकाश भरना प्रारम्भ कर दिया। इस समय काशी का वातावरण पं. जी के व्यक्तित्व और योग्यता के विकास के लिए सर्वाधिक उपयोगी रहा। पं. जी ने अथक परिश्रम और अपूर्व आत्मीयता से छात्रों को सुयोग्य बनाने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

बचपन में दिगम्बर जैन बालाविश्राम, आरा आश्रम में मुझे छ: वर्ष पढ़ाने वाले, गुरु डॉ. नेमिचंद्र ज्योतिषाचार्य ने पं. कैलाशचंद्र जी की प्रशंसा करते हुए लिखा था :- 'गुरु देव का हृदय नारियल के समान ऊपर से कठोर, पर अन्तस से छात्रों के प्रति ममता का अजस्त्र स्रोत। वे छात्रों के उतने ही हितैषी हैं, जितने पिता अपनी संतान के प्रति होते हैं।' समस्त धर्मों, पुराणों और ग्रंथों में जैन-अजैन सभी कवियों ने गुरु की महिमा का बखान किया है। बनारसीदास कहते हैं:-

**संसार सागर तरण तारण गुरु जहाज विशैखिये।**
**जग माहिं गुरु सम कहि बनारसि और कोऊ न पेखिये॥**

सूफी संत जायसी ने भी सगुण निर्गुण परमात्मा के सच्चे ज्ञान को प्राप्त करने के लिए गुरु के रूपक द्वारा सुआ को मार्गदर्शक सिद्ध किया है - **गुरु सुआ जैई पंथ दिखावा- विन गुरु जगत को निर्गुण पावा।** महाकवि तुलसीदास ने भी गुरु के उपदेश बिना अज्ञान एवं मोहरूपी अंधकार मिटना असंभव बताया है।

**वंदऊं गुरुपद कंज कृपासिंधु नर रूप हरि।**
**महामोह तम पुज जासु वचन रवि कर निकर॥**

उप अधिष्ठाता
दिगम्बर जैन गुरुदत्त उदासीन आश्रम सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन्मशताब्दी वर्ष पर पावन स्मरण

# पं. वंशीधर जी व्याकरणाचार्य

डॉ. ज्योति जैन

जैनधर्म एवं संस्कृति के विकास में अनेक आचार्यों, सन्तों, विद्वानों एवं श्रेष्ठियों का अमूल्य योगदान रहा है। जैन धर्म एवं संस्कृति के संवर्द्धन एवं सम्पोषण में ललितपुर जिले का गौरवपूर्ण इतिहास है। जहाँ एक ओर ललितपुर जिले के प्राचीन तीर्थक्षेत्र जैनियों की महत्त्वपूर्ण विरासत के रूप में विद्यमान है, वहीं दूसरी ओर इस जिले के अनेक साधु-संतों, आर्यिकाओं, विद्वानों एवं विदुषियों ने साहित्य एवं सांस्कृतिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। अनेक प्रतिभाओं व मनीषी विद्वत् रत्नों को जन्म देने वाली इस भूमि में पंडित वंशीधर व्याकरणाचार्य का नाम स्वर्णाक्षरों में उल्लेखनीय है।

जैनदर्शन के उद्‌भट विद्वान् पं. वंशीधर जी का जन्म भाद्रपद शुक्ल ७, वि.सं. १९६२ (सन् १९०५) में सोंरई, जिला ललितपुर में हुआ। पंडित जी के पिता का नाम श्री पं. मुकुन्दीलाल और माता का नाम श्रीमती राधादेवी था। पिताजी अपने क्षेत्र के माने हुए विद्वान् पंडित, शास्त्रप्रतिलेखक और प्रतिष्ठाचार्य थे। समाज में जहाँ कहीं भी जलयात्रा, सिद्धचक्र विधान, पंचकल्याणकप्रतिष्ठा आदि धार्मिक कार्य होते थे, उनमें उन्हें ससम्मान आमंत्रित किया जाता था। दशलक्षण पर्व में भी शास्त्र-वचनिका के लिए वे समाज के आमंत्रण पर जाते थे। उनके हाथ के लिखे हुए शास्त्र आज भी कई मंदिरों में उपलब्ध हैं।

पंडित वंशीधर जी का बचपन अनेक कठिनाइयों में गुजरा। जब वे तीन माह के थे तभी पिताजी का स्वर्गवास हो गया। बारह वर्ष की आयु आते-आते माता जी का साया भी सिर से उठ गया। वे अभावों में पले-पुसे और आगे बढ़े। पंडित जी की प्राथमिक शिक्षा स्थानीय प्राइमरी स्कूल में कक्षा चौथी तक हुई। बाद में पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी अपने साथ उन्हें वाराणसी ले गए। वहाँ स्याद्वाद जैन महाविद्यालय में उनकी छत्र-छाया में ग्यारह वर्ष तक व्याकरण, साहित्य, दर्शन और सिद्धान्त का उच्च अध्ययन किया। प्रारम्भ से ही आप कुशाग्र बुद्धि के थे। आपने प्रथम श्रेणी में ही सभी परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। व्याकरणाचार्य परीक्षा में तो प्रावीण्य सूची में द्वितीय स्थान प्राप्त किया था।

१९२८ में आपका विवाह बीना में शाह मौजीलाल जी की सुपुत्री लक्ष्मीबाई के साथ सम्पन्न हुआ। पंडित जी की धर्मपत्नी स्वभावत: उनके समान ही गुणधर्मी थी। उनमें गाम्भीर्य, सहजस्नेह, वात्सल्य, उदारता, दयालुता, सहनशीलता, अक्रोध, अमान, अलोभ जैसे गुण विद्यमान थे। अस्वस्थ होने पर भी वे पंडित जी की दिनचर्या और आतिथ्य में कभी शैथिल्य नहीं करती थीं। कुटुम्बियों और रिश्तेदारों के प्रति उनके हृदय में अगाध स्नेह एवं आदर रहा। ५८ वर्ष की आयु में उनका स्वर्गवास हो गया। वे अपने पीछे तीन सुयोग्य पुत्र और तीन पुत्रियों का भरा-पूरा परिवार छोड़ गईं।

देश के स्वाधीनता संग्राम में पं.जी का योगदान अविस्मरणीय है। पच्चीस साल की युवावस्था में अपनों की सारी चिंता छोड़ वंशीधर जी स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। मातृभूमि की पुकार सुन वंशीधर जी विभिन्न आंदोलनों में सक्रिय हो उठे। चाहे १९३१ का असहयोग आंदोलन हो या १९३७ के एसेम्बली चुनाव हों, १९४१ का व्यक्तिगत सत्याग्रह हो या १९४२ का भारत छोड़ो आंदोलन हो, **वंशीधर जी ने तन, मन और धन सब कुछ स्वतंत्रता के इस महासमर में होम करते समय कोई संकोच नहीं किया। सच पूछो तो जैसी निष्ठा एवं समर्पण के साथ उन्होंने ज्ञान की साधना की थी, वैसी ही निष्ठा और समर्पण के साथ मातृभूमि के प्रति अपने दायित्वों का निर्वाह किया।**

१९४२ के भारत छोड़ो आंदोलन में पंडित वंशीधर जी की भूमिका इतनी महनीय रही, साथ ही सेवा संकल्प इतना दृढ़ रहा कि अपने ही साथियों में उदाहरण बनते चले गए। न जाने कितनों ने उन विषम परिस्थितियों में उनसे प्रेरणा प्राप्त की और न जाने कितने घरों में उनकी सहायता से मनोबल के दीप जलते रहे। इसकी कोई सूची न कभी बनी और न बन सकेगी। नगर कांग्रेस कमेटी की अध्यक्षता से लेकर प्रांतीय कांग्रेस कमेटी की सदस्यता तक, उन्हें जब जहाँ जो काम सौंपा गया, उसे उन्होंने अपने व्यक्तिगत स्वार्थों से परे एक राष्ट्रीय गरिमा के साथ निभाया।

१९२१ से १९४६ तक के पच्चीस साल स्वतंत्रता की लड़ाई का वह समय था जब राष्ट्र के लिए बलिदान, यातनाएँ, कारावास आदि ही था। किसी तरह के जयकारे नहीं थे। राष्ट्र प्रेम में आत्मसंतोष ही एकमात्र उपलब्धि मानी जाती थी। **सागर और नागपुर की जेलों में बिताया गया बंदी जीवन हो या अमरावती जेल में सही गई दुर्दम यातनाएँ, पंडित जी का व्यक्तित्व कहीं नहीं झुका। जेल की यात्राओं ने उनके व्यक्तित्व को और भी विशाल बना दिया,** छुआछूत, दहेज, अनमेल विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध जूझने का साहस प्रदान किया।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पं. वंशीधर जी का व्यक्तित्व महान् था और कृतित्व बहुआयामी। उन्होंने जहाँ सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया वहीं कभी भी अपनी राष्ट्रीय सेवाओं को भुनाने का विचार तक नहीं किया। उन्होंने 'स्वतंत्रता आंदोलन-संघर्ष के बाद देश आजाद हो गया, लड़ाई समाप्त हो गई' सही सोचकर माँ जिनवाणी की आराधना में अपने को नियोजित कर लिया।

पं. वंशीधर जी अपने समय के लोकप्रिय एवं श्रद्धास्पद विद्वान् थे। शैक्षणिक, सामाजिक एवं धार्मिक गतिविधियों में उनकी महती भूमिका रहती थी। जैनसाहित्य और समाज सेवा में लगे पंडित जी भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद् के यशस्वी अध्यक्ष रहे। इनका कार्यकाल गरिमापूर्ण था। गुरु गोपालदास बरैया शताब्दी समारोह उसी बीच आयोजित हुआ और उसकी सफलता में पंडित जी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। श्री गणेश प्रसाद वर्णी जैन ग्रंथमाला के मंत्री के नाते उन्होंने संस्था को निरंतर आगे बढ़ाने का प्रयास किया।

पंडित जी सरस्वती पुत्र थे। उनकी विद्याराधना और साहित्य साधना उच्चकोटि की थी। वे मौलिक रचनाकार थे। पंडित जी ने अपना संपूर्ण जीवन जिनवाणी की आराधना और साहित्य साधना में लगाया। पं. जी की मौलिक कृतियां उनके गहन चिंतन को प्रकट करती हैं। **'खानिया तत्त्वचर्चा और उसकी समीक्षा'** लिखकर उन्होंने आगम का विशुद्ध पक्ष सामने रखा। **'निश्चय और व्यवहार'** उनकी चर्चित कृति है। पं. जी की अन्य पुस्तकें हैं- 'जैन दर्शन में कार्यकारण -भाव और कारक व्यवस्था', 'पर्यायें क्रमबद्ध भी होती हैं और अक्रमबद्ध भी', 'भाग्य और पुरुषार्थ एक नया अनुचिंतन', 'जैन तत्त्वमीमांसा की मीमांसा' आदि।

बीसवीं सदी के विद्वानों में पंडित जी का स्थान अग्रगण्य है। १९९० में उनकी विशिष्ट सेवाओं का अभिनंदन करने हेतु सागर (म.प्र.) में एक बृहत् अभिनंदन ग्रंथ भेंट कर आपको सम्मानित किया गया था। ११ दिसम्बर, १९९६ में बड़े ही शांत परिणामों के साथ आपका निधन हो गया। पूज्य पंडित जी के साहित्य का, सामाजिक, शैक्षणिक एवं धार्मिक अवदान के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन हेतु शताब्दी वर्ष में उनके द्वारा की गई जिनवाणी-आराधना का मूल्यांकन अवश्य ही होना चाहिए, जिससे विलुप्त होती जैन शास्त्रीय विद्वानों की परम्परा को मार्गदर्शन मिले और नवीन विद्वान् इस ओर प्रवृत्त हों। हमारी विनम्र श्रद्धांजलि।

**शिक्षक आवास 6**
**श्री कुन्द कुन्द जैन महाविद्यालय परिसर**
**खतौली- २५१२०१ (उ.प्र.)**

# गोमटेश बाहुबली

**कैलाश मड़बैया**

**ऋषभ के राजकुँअर,**
**सुनन्दा के लाड़कुँअर,**
**भरत के भाई की है मूरत भोली-भली!**
**नयनों में 'अनेकान्त',**
**नासिका एकाग्र शान्त,**
**होंठ अहिंसा की जैसे आँच में खिली कली!**
**पृथ्वी-पुत्र पौरुष से**
**आसमाँ को छू रहा,**
**श्रमणों का सन्त हुआ साधना महाबली**
**सूरज की क्रान्ति और**
**चन्द्रमा की कान्ति लिये,**
**देह-बली, आत्म-बली, गोमटेश बाहुबली!**

**चित्रगुप्त नगर, भोपाल**

### मृदुमती माता जी के बेगमगंज चातुर्मास में हुए अभूतपूर्व कार्यक्रम

संत शिरोमणी १०८ आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की परम विदुषी शिष्या आर्यिकारत्न १०५ श्री मृदुमती माता जी के पावन सान्निध्य में आचार्य विद्यासागर शिक्षण शिविर सम्पन्न किया गया तथा आगामी पंचकल्याणक हेतु मंदिर वेदी शिखर का नव निर्माण किया गया। आर्यिका रत्न मृदुमाताजी द्वारा नगर के समस्त स्कूलों एवं जेल में पावन प्रवचन किए गए।

**नवनीत जैन**

गैरतगंज में ऐतिहासिक १००८ श्री समवशरण महामण्डल विधान आर्यिका रत्न १०५ तपोमती माता जी, आर्यिका श्री सिद्धान्तमती माता जी, आर्यिका श्री नम्रमती माता जी, आर्यिका श्री पुराणमती माता जी एवं आर्यिका श्री उचितमती माता जी ससंघ के परम सान्निध्य में प्रतिष्ठाचार्य वा. ब्र. सुमत जी एवं बा. ब्र. अनिल जी के निर्देशन में सम्पन्न किया गया।

**अध्यक्ष - टेकचन्द जैन**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# साधुओं को अवश्य दें आहारदान, किन्तु रहें सावधान

पं. राजकुमार जैन शास्त्री

## आहार दान का अधिकार कौन?

१. आहार दाता का प्रतिदिन देवदर्शन का नियम, रात्रिभोजन त्याग, सप्त व्यसनों का त्याग तथा सच्चे देव, शास्त्र, गुरु को मानने का नियम होना चाहिये।

२. जिनका आय का स्रोत हिंसात्मक व अनुचित न हो। आहारदान वे ही कर सकते हैं, (शराब का ठेका, जुआ, सट्टा खिलाना, कीटनाशक दवायें, ब्यूटी पार्लर, नशीली वस्तु का व्यापार)।

३. जिनके परिवार में जैनेतरों से विवाह सम्बन्ध न हुआ हो।

४. जिनके परिवार में विधवा विवाह सम्बन्ध न हुआ हो।

५. जो अपराध, दिवालिया, पुलिस केस, सामाजिक प्रतिबंध आदि से परे हों।

६. जो हिंसक प्रसाधनों (लिपिस्टक, नेलपेन्ट, चमड़े से बनी वस्तुएँ, लाख की चूड़ी, हाथी दांत व चीनी के आभूषण) रेशम के वस्त्रों आदि का उपयोग न करते हों एवं नाखून बढ़ाये न हों।

७. जो किसी भी प्रकार के जूते, चप्पल आदि निर्माण या व्यवसाय करते हैं, वे भी आहार देने के पात्र नहीं हैं।

८. जो भ्रूणहत्या, गर्भपात करते हैं, करवाते हैं एवं उसमें प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से सहभागी होते हैं (सम्बन्धित दवाई आदि बेचने के रूप में) वे भी आहार दान देने के पात्र नहीं हैं।

९. यदि शरीर में घाव हो या खून निकल रहा हो एवं बुखार, सर्दी, खांशी, केंसर, टी. वी., सफेद दाग आदि रोगों के होने पर आहार न देवें।

१०. रजस्वला स्त्री छटवें दिन भगवान् के दर्शन, पूजन व साधु को आहार देने के योग्य शुद्ध होती है। अशुद्धि के दिनों में चौके से सम्बन्धित कोई कार्य नहीं करें और खाद्य सामग्री शोधन भी न करें। बर्तन भी जो स्वयं के उपयोग में लिये हैं, उन्हें अग्नि के द्वारा शुद्ध करना चाहिये।

## आहारदान के नियम

१. पाद प्रक्षालन के बाद गंधोदक की थाली में हाथ नहीं धोयें तथा सभी लोग गंधोदक अवश्य लें।

२. चौके में पैर धोने के लिये प्रासुक जल ही रखें और सभी लोग पैर एड़ी से अच्छी तरह धोकर ही प्रवेश करें एवं अंदर भी अच्छी तरह से हाथ धोवें।

३. पड़गाहन के समय साफ-सुथरी जगह में खड़े होवें। जहाँ नाली का पानी बह रहा हो, मरे जीव जंतु पड़े हों, हरी घास हो, पशुओं का मल हो, ऐसे स्थान से पड़गाहन न करें एवं साधुओं को चौके तक ले जाते समय भी इन सभी बातों का ध्यान रखें।

४. नीचे देखकर ही साधु की परिक्रमा करें एवं परिक्रमा करते समय साधु की परछाई पर पैर न पड़े इसका ध्यान रखें।

५. साधु के पड़गाहन के बाद पूरे आहार करते समय साधु की परछाई पर पैर न पड़े इसका ध्यान रखें।

६. जब दूसरे के चौके में प्रवेश करते हैं तो श्रावक एवं साधु से अनुमति लेकर ही प्रवेश करें।

७. नीचे देखकर जीवों को बचाते हुए प्रवेश करें। यदि कोई जीव दिखे तो उसे सावधानी से अलग कर दें।

८. पूजन द्रव्य एक ही व्यक्ति चढ़ायें, जिससे द्रव्य गिरे नहीं क्योंकि उससे चींटियाँ आती हैं। उठते समय हाथ जमीन से न टेकें।

९. पाटा पड़गाहन से पूर्व ही व्यवस्थित करना चाहिये एवं ऐसे स्थान पर लगाना चाहिये, जहाँ पर पर्याप्त प्रकाश हो, ताकि साधु को शोधन में असुविधा न हो।

१०. सामग्री एक ही व्यक्ति दिखाये जो चौके का हो और जिसे सभी जानकारी हो।

११. महिलायें एवं पुरुष सिर अवश्य ढांककर रखें। जिससे बाल गिरने की संभावना न रहे।

१२. शुद्धि बोलते समय हाथ जोड़कर शुद्धि बोलें। हाथ में आहार सामग्री लेकर शुद्धि न बोलें, क्योंकि इससे थूक के कण सामग्री में गिर जाते हैं। आहार के दौरान मौन से रहें। बहुत आवश्यक होने पर सामग्री ढंककर सीमित बोलें।

१३. पात्र में जाली ही बांधें एवं पात्र गहरा, बड़ा रखें, जिससे



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि जीव गिरें तो डूबे नहीं।

८. आहार नवधाभक्ति पूर्वक ही देवें क्योंकि इस विधि पूर्वक दिया गया आहार दान ही पुण्य बंध का कारण होता है। नवधा भक्ति-पड़गाहन, उच्चासन, पादप्रक्षालन, पूजन, नमन, मन:शुद्धि, वचन शुद्धि एवं काय शुद्धि का संकल्प करना।

## निरन्तराय आहार हेतु सावधानियाँ

साधु को निरंतराय आहार होवे, यह दाता की सबसे बड़ी उपलब्धि है, क्योंकि साधु की सम्पूर्ण धर्म साधना, चिंतन, पठन, मनन निर्बाध रूप से अविरल अर्हनिश होती रहे, इस हेतु निरंतराय आहार आवश्यक है। सावधानी रखना दाता का प्रमुख कर्त्तव्य है।

तरल पदार्थ (जल, दूध, रस आदि) जो भी चलायें तुरंत छान कर देवें लेकिन प्लास्टिक की छन्नी का प्रयोग न करें। एकदम जल्दी व एक दम धीरे न दें।

पड़गाहन के पूर्व सभी सामग्री का शोधन कर लेवें तथा चौके में जीव वगैरह न हों बारीकी से देखें।

यदि साधु को आहार लेते समय घबराहट हो रही है तो नींबू, अमृतधारा या हाथ में थोड़ा सा बेसन लगाकर सुंघा दें।

बाहर के लोगों को कोई सामग्री न पकड़ाएँ, उनसे चम्मच से सामग्री दिलवायें।

कोई भी वस्तु जल्दबाजी में न दें। कम से कम तीन बार पलटकर देख लें।

सामग्री का शोधन वृद्धों एवं बच्चों से न करायें। इनसे चम्मच से सामग्री दिलवायें।

मुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक जो भी साधु हैं, उनसे तीन बार तक आग्रह / निवेदन करें। जबरजस्ती सामग्री नहीं दें।

यदि पात्र में मक्खी गिर जाये तो उसे उठाकर राख में रखने से मरने की संभावना नहीं रहती है।

१०. ग्रास यदि एक व्यक्ति ही चलाये तो उसका उपयोग स्थिर रहता है। जिससे शोधन अच्छे से होता है।

११. एक व्यक्ति एक ही वस्तु पकड़े, एक साथ दो नहीं। जिससे शोधन अच्छी तरह से हो सके।

१२. आहार देते समय भावों में खूब विशुद्धि बढ़ायें। णमोकार मंत्र भी मन में पढ़ सकते हैं।

१३. प्रतिदिन माला फेरें कि तीन कम नौ करोड़ मुनिराजों के आहार निरंतराय हों।

१४. शोधन खुली प्लेट में ही करें। जिससे शोधन ठीक तरह से हो।

१५. सूखी सामग्री का शोधन एक दिन पूर्व ही अच्छी तरह करना चाहिये। जिससे कंकड़, जीव, मल, बीज आदि का शोधन ठीक से हो जाता है।

१६. अधिक गर्म जल, दूध वगैरह भी न चलायें। यदि ज्यादा गर्म है और साधु नहीं ले पा रहे हैं तो साफ थाली के माध्यम से ठंडा करके देवें। यदि दूध गाय का है तो ऐसे ही दें। यदि भैंस का है तो आधे गिलास दूध में आधा जल मिलाकर दें। यदि ऐसा ही लेते हैं तो बिना जल मिलाये भी दे सकते हैं।

१७. आहार देते समय पात्र के हाथ से ग्रास नहीं उठाना चाहिये, क्योंकि इससे अन्तराय हो जाता है।

१८. सभी के साथ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों की शुद्धि, ईंधन शुद्धि, बर्तनों की शुद्धि भी आवश्यक है।

१९. मुख्य रूप से साधु का लाभान्तराय कर्म एवं दाता का दानान्तराय कर्म का उदय होता है। लेकिन दाता की असावधानियों के कारण भी अधिकांश अंतराय आते हैं।

२०. साधु को आहार देते समय दाता का हाथ साधु की अंजुली से स्पर्श नहीं होना चाहिये। यदि अंजुलि के बाहर कोई बाल या जीव हटाना है तो हटा सकते हैं।

२१. सामग्री देते समय सामग्री गिराना नहीं चाहिये, कभी-कभी ज्यादा गिरने के कारण साधु वह वस्तु लेना बंद भी कर सकते हैं।

२२. गैस, चूल्हा, लाईट आदि पड़गाहन के पूर्व ही बंद कर देवें।

२३. दाता को मंदिर के वस्त्र पहनकर आहार नहीं देना चाहिये तथा पुरुषों को वस्त्र बदलते समय गीली तौलिया पहनकर वस्त्र बदलने चाहिये। क्योंकि अशुद्ध वस्त्रों केऊपर शुद्ध वस्त्र पहन लेने से अशुद्धि बनी रहती है। महिलाओं एवं बच्चों को भी यही बातें ध्यान रखना चाहिये तथा फटे एवं गंदे वस्त्र भी नहीं पहनें तथा चलते समय वस्त्र जमीन में भी नहीं लगने चाहिये।

२४. शुद्धि के वस्त्र बाथरूम आदि से न बदलें और न ही शुद्धि के वस्त्र पहनकर शौच अथवा बाथरूम का प्रयोग



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करें और यदि करें तो वस्त्रों को पूर्ण रूप से बदल कर अन्य शुद्ध वस्त्र धारण करने के पूर्व शरीर का स्नान आवश्यक है अन्यथा काय (शरीर) शुद्धि नहीं रहेगी।

२५. चौके में कंघा, नेलपॉलिस, बेल्ट, स्वेटर आदि न रखें एवं चौके में कंघी भी न करें।

२६. यदि पात्र मुनि हैं तो बगल में टेबिल पहले से रख लें। यदि आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक हों तो बड़ी चौकी रख लें। जिस पर सामग्री रखने में सुविधा रहती है।

२७. बर्तनों में वार्निस एवं स्टीकर नहीं लगा होना। वह सर्वथा अशुद्ध है।

२८. जहाँ चौका लगा हो, उस कमरे में लेटरिन, वाथरूम नहीं होना चाहिये। वह अशुद्ध स्थान माना जाता है।

**क्षेत्रीय अधिकारी, द. प. सा. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक**
**देवरी सागर (म. प्र.)**

# गोमटेश का पत्थर बोल रहा है

**डॉ. सुशील जैन**

बढ़ रही शोभा शरीर की चढ़कर बेल लतायें,
उस पावन प्राचीन भूमि पर दीप अनेक जलायें।
भव्य कलाओं से निर्मित माटी पर पलक बिछायें,
धन्य-धन्य वह मरुस्थल जिसने गीत धर्म के गाये।
जो भारत का गौरव रखने रंग उड़ेल रहा है,
ऐसा लगता है गोमटेश का पत्थर बोल रहा है ॥१॥

उस पत्थर का टुकड़ा-टुकड़ा भगवान् के गुण गाता,
हीरे की मिट्टी से ज्यादा उसको परखा जाता।
झूम उठा अन्तस्थल उसका जो एक बार को जाता,
मस्तक टेक बाहुबली पर जीवन सफल बनाता है।
उन पाषाणों को जग सारा कब से देख रहा है,
ऐसा लगता है गोमटेश का पत्थर बोल रहा है ॥२॥

विन्ध्यगिरि और चन्द्रगिरि कब से यहाँ खड़े हैं,
इस पर मंदिर वैसे के वैसे अब तक यहाँ बने हैं।
श्रुतकेवली भद्रबाहु की बोल रही हर काया,
जिसने समाधिमरण कर जीवन सफल बनाया।
कितने ऋषि मुनि जन इसका स्वयश लूट रहा है,
ऐसा लगता है गोमटेश का पत्थर बोल रहा है ॥३॥

किस शिल्पी ने श्रम से उस पत्थर में प्राण दिये,
मूरत मानो बोल रही सुन्दर तम रूप लिये।
शिल्पी हो गया वह धन्य जिसने अपना पथ मोड़ा,
छैनी हथौड़ा चला चला भगवान् बनाकर छोड़ा।
अचरज में पड़ जाता शिल्पी जो उसको देख रहा है,
ऐसा लगता है गोमटेश का पत्थर बोल रहा है ॥४॥

यह सत्तावन फिट तक ऊँची नभ को चूम रही है,
जिसके चरणों को अब जगती माँ भी पूज रही है।
मंदिर प्राचीन बना जिस पर जलता दीप सदा है,
मानस्तम्भ की शोभा न्यारी बीचों बीच खड़ा है।
सूरज चन्दा दर्शन करने किरणें बिखेर रहा है,
ऐसा लगता है गोमटेश का पत्थर बोल रहा है ॥५॥

नृपमंत्री चामुण्डराय ने इसका कार्य सम्हाला,
गंगराज्य के मंत्री ने था किया निर्माण निराला।
नौ सौ नब्बे में निर्मित फैली कीर्ति पताका,
जिसको सुनकर हर मानव अचरज मन में लाता।
राजवंश मैसूर प्रांत भी इसको चूम रहा है,
ऐसा लगता है गोमटेश का पत्थर बोल रहा है ॥६॥

नहीं लेखनी लिख सकती यह गौरव कथा तुम्हारी,
अभिषेक किया था तन पर जो थी गुल्लिका नारी।
सुशील तेरा यश पाकर चरनन शीश झुकाता,
बाहुबली की देख मूर्ति को फूला नहीं समाता।
एक बार जो भी आता नहीं तुझको भूल रहा है,
ऐसा लगता है गोमटेश का पत्थर बोल रहा है ॥७॥

**सम्पादक- जैन प्रभात**
**जैन नर्सिंग होम कुरावली, मैनपुरी**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# दूध अमृत है या विष ? शाकाहार है या मांसाहार ?

**संजय पाटनी**

पिछले कुछ समय से दूध के विषय में एक बहस चल रही है कि दूध शाकाहार का एक रूप है या मांसाहार का? और इस बहस को अंजाम दिया भारत के सबसे नामचीन घराने की बहू और शाकाहार के प्रति समर्पित श्रीमती मेनका गांधी ने। यों तो श्रीमती मेनकागांधी किसी परिचय की मोहताज नहीं है सारा देश जानता है कि श्रीमती गांधी मूक और बेबस जानवरों की मुख्य संरक्षक हैं और उनके हक के लिए लड़ने में वह सदैव आगे रहती हैं। पर दूध जैसे विषय पर उन्होंने बहस छेड़कर हजारों सालों से अमृत जैसे इस आहार को उन्होंने मांसाहार का ही एक रूप बताकर जनमानस विशेषकर अहिंसा प्रधान जैन धर्मावलंबियों की भावना को गहरा आघात पहुँचाया है और इसी विषय पर मैं आप सभी विद्वान् पाठकों की राय जानना चाहूँगा।

भारत के सबसे चर्चित अखबार 'नवभारत टाइम्स' से दिनांक २७.११.०५ रविवारीय अखबार में मेनकागांधी का इस विषय पर एक लेख छपा था, जिसमें उन्होंने 'दूध मांसाहार का ही एक रूप है', के बारे में अनेक तर्क दिए और यह जताने की कोशिश की कि जो व्यक्ति दूध का सेवन करते हैं, वह जाने अनजाने मांसाहार का ही सेवन करते हैं। इस विषय पर उनके लेख की मुख्य बातें इस प्रकार हैं।

''दूध मांसाहार है क्योंकि यह जानवर के शरीर से मिलता है और उसके खून से बनता है। आम भारतीय अगर दूध को शाकाहारी मानते हैं तो इसके लिए हमारे देश के डॉक्टर दोषी हैं, जिनके पास खानपान से सम्बन्धित कोई जानकारी नहीं है। दूध हमारे शरीर के लिए बेहद नुकसानदेह तेल है। सच्चाई यह है कि दूध अनुपयोगी मांसाहार और खतरनाक है और किसी भी रूप में शाकाहारियों के भोजन का हिस्सा नहीं होना चाहिए।''

हजारों हजार साल पहले हमारे ऋषि मुनियों ने दूध की व्याख्या अमृत रूप में की थी। वेद शास्त्रों और पुराणों में इस बात का उल्लेख है कि अमृत के रूप में हमें दूध मिला है। पंचामृत अभिषेक तथा शिवलिंग पर दूध के अभिषेक इस बात के प्रमाण हैं कि दूध शुद्ध ही नहीं एक पवित्र पदार्थ है। तो क्या मेनका गांधी की बातों को मानकर हम इन सब प्रमाणों को झुठला दें ? गलत मान लें ? यह मान लें कि हमारे वेद, पुराण, शास्त्र सब गलत हैं ?

आज मैं मेनका गांधी से एक सवाल का जवाब जानना चाहूंगा कि जिन बच्चों की मां बच्चे को जन्म देते ही स्वर्ग सिधार जाती हैं, वह बच्चे किसका दूध पीकर बड़े होते हैं? स्वाभाविक है ऐसे बच्चों को गाय का दूध ही पिलाया जाता है। उन बच्चों की जिन्दगी गाय के दूध पर ही निर्भर होती है। अगर हम मेनका गांधी की बातों को मान लें कि दूध, दूध नहीं मांसाहार का ही रूप है तो फिर उन बच्चों की जिंदगी कैसे बचे? कितनी ही बार देखने तथा सुनने में आया है कि वात्सल्य से ओतप्रोत पशु के स्तनों से स्वत: दूध निकलने लगता है। अगर दूध, दूध न होकर खून है तो फिर थनों से दूध की जगह खून निकलना चाहिए?

आज अगर हम मेनका गांधी की बातों को इसी तरह नजरअंदाज करते रहे तो हम शाकाहारी समाज के सम्मुख एक गंभीर संकट खड़ा हो जाएगा। और इसके लिए मैं सभी विद्वान् पाठकों से निवेदन करता हूँ कि वह इसके विरोधस्वरूप श्रीमती मेनका गांधी को सख्त से सख्त भाषा में पत्र लिखें। श्रीमती गाँधी का दिल्ली का पता है - श्रीमती मेनका गाँधी, संसद सदस्या, ए-५ महारानी बाग, नई दिल्ली।

यह सही है कि लोकतंत्र में सबको अपनी-अपनी बात रखने का अधिकार है, पर इसका मतलब यह तो नहीं कि कोई हमारी आस्था को ही चोट पहुँचाए। मैं श्रीमती गाँधी से निवेदन करूँगा कि वह दूध को अमृत ही बना रहने दें। अपनी तर्कहीन बातों से उसे खून न बनने दें।

**इचलकरंची ( महा. )**

**जैन गजट से साभार**

- यदि तुम्हारे एक शब्द से भी किसी को कष्ट पहुँचता है तो तुम अपनी सब भलाई नष्ट समझो।
- आग का जला हुआ तो समय पाकर अच्छा हो जाता है, पर वचन का घाव सदा हरा बना रहता है।
- जो पुरुष समझबूझ कर अपनी इच्छाओं का दमन करता है, उसे सभी सुखद वरदान प्राप्त होंगे।

**तिरुवल्लुवर -रचित 'तिरुक्कुरल' से साभार**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# दूध मांसाहार नहीं है

**जयकुमार जैन 'जलज'**

'अहा! जिंदगी' के नवम्बर २००५ वाले अंक में शाकाहार विषयक अनूठी, संग्रहणीय सामग्री पढ़ने को मिली। किन्तु इसी अंक में कुछ भ्रामक, असत्य एवं पूर्वाग्रह ग्रसित सामग्री को पढ़कर आश्चर्य, विस्मय भी हुआ। यानी सुस्वादमय व्यंजनों के बीच कटुक कसायलापन जैसा अनुभव भी हुआ।

इस अंक के पृष्ठ ११ पर 'खरीदने से पहले पहचानें' शीर्षकगत जानकारी में असावधानीवश कुछ असत्य, अप्रामाणिक सूचना प्रकाशित हुई/की गई है। इस विषय में प्रामाणिक तौर पर तथ्यात्मक विवरण यह है कि भारत सरकार के स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, नई दिल्ली ने (ना कि 'भारतीय मानक ब्यूरो' ने) 'भारत के राजपत्र असाधारण' सं. १६ में दिनांक ४ अप्रैल २००१, बुधवार को जी.एस.आर. २४५ (ई) अधिसूचना प्रकाशित कराई थी। यह ४ अक्टूबर, २००१ से प्रभावशील भी हो चुकी है।

इस अधिसूचना में 'खाद्य अपमिश्रण निवारण (चौथा संशोधन) नियम २००१' के अंतर्गत 'भूरे रंग (Brown Colour) वाली वर्गाकार आकृति के भीतर भूरे रंग वाले भरे हुए गोले' को ('खाली गोला' अथवा 'लाल रंग वाला' गोला नहीं) पैक्ड-डिब्बाबंद 'मांसाहार' उत्पादों के पैकेटों पर उत्पाद के नाम या ब्राण्ड नाम के नजदीक ही एवं मुख्य प्रदर्शन फलक पर ही बनाया जाना अनिवार्य कर दिया है।

इस अंक में अनेकश: 'मांसाहार' या 'शाकाहार' रूप पदार्थों या उत्पादों को 'मांसाहारी' या 'शाकाहारी' लिखना या बोला जाना भी भाषा/व्याकरण की दृष्टि से गलत प्रयोग माना जाएगा। कारण मांसाहार या शाकाहार सामग्री के उपयोगकर्ता को 'मांसाहारी' या 'शाकाहारी' यानी 'मांस-आहारी' या 'शाक-आहारी' कहा जाना उचित है ना कि पदार्थ को।

इसी भांति, भारत सरकार के स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, नई दिल्ली ने ही एक अन्य अधिसूचना २० दिसम्बर २००१ को जी.एस.आर. ९०८(ई) 'भारत के राजपत्र असाधारण' सं. ६३० में प्रकाशित कराई थी। यह २० जून, २००२ से प्रभावशील हो चुकी है। इस अधिसूचना में 'खाद्य अपमिश्रण निवारण (नवां संशोधन) नियम २००१' के अंतर्गत 'हरे रंग वाली वर्गाकार आकृति के भीतर हरे रंग (Green Colour) वाले भरे हुए गोले' को पैक्ड डिब्बाबंद 'शाकाहार' (इस हेतु 'शाकाहारी' शब्द लिखा/बोला जाना भी गलत है) उत्पादों के पैकेटों पर उत्पाद के नाम या ब्राण्ड नाम के नजदीक ही तथा मुख्य प्रदर्शन फलक पर ही बनाया जाना अनिवार्य कर दिया।

खाद्य पदार्थ विषयक समस्त प्रकार की प्रचार सामग्रियों पर ये प्रतीक चिह्न उक्त राजपत्रों में दर्शाई गई तालिकाओं के अनुसार प्रदर्शन फलक के आकार के आधार पर छोटे-बड़े होंगे। इस हेतु विशेष विवरण उक्त राजपत्रों में देखा जा सकता है।

इसी अंक के पृष्ठ १२ से १५ तक में प्रकाशित लेखों/जानकारियों के परिप्रेक्ष्य में भी उक्त जी.एस.आर.२४५ (ई) अधिसूचना का अवलोकन करना महत्त्वपूर्ण है। भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय ने इसमें 'मांसाहार' की परिभाषा भी सुनिश्चित कर दी है। उसके अनुसार 'मांसाहार खाद्य पदार्थ से तात्पर्य ऐसे खाद्य पदार्थ से है जिसमें पूर्णत: या अंशत: किसी भी पशु, पक्षी, जलीय या समुद्री जीव जंतु या अंडे या पशु-स्रोत से प्राप्त किन्हीं भी उत्पादों-इसमें दूध या दूध से बने हुए पदार्थ शामिल नहीं हैं का प्रयोग किया गया हो।' इस परिभाषा से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि जहाँ भारत सरकार के उक्त मंत्रालय ने अंडों को मांसाहार माना ही है, वहीं 'दूध या दूध से बने हुए पदार्थों' को मांसाहार नहीं माना है। इस कारण से अंक के पृष्ठ १४-१५ पर प्रकाशित खोजात्मक लेख 'क्या दूध मांसाहार है?' की सत्यता/खोज पर स्वयमेव प्रश्नचिह्न लग जाता है।

- जिन पुरुषों ने कषायों का दमन और इन्द्रियों को वश में नहीं किया, उनका कथन व्यभिचारी जन के कथन के समान यथार्थ व हितकर नहीं हो सकता है।

  The statements of men who haven't controlled passions and subjugated their senses are like the words of an adulterer. They can never be authentic and beneficial.

  'वीरदेशना' से साभार



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# अहिंसक चूल्हे

**डॉ. जीवराज जैन**

भोजन पकाने व बनाने के लिए हम सभी अग्नि का प्रयोग करते आ रहे हैं। रसोईगैस, कोयला या लकड़ी को जलाकर यह अग्नि पैदा की जाती है। कुछ घरों में विद्युत हीटर या माइक्रोवेवहीटर से गर्मी पैदा करके भी भोजन बनाया जाता है। जैन मतानुसार 'अग्नि' और 'विद्युत' सजीव एकेन्द्रिय जीव होते हैं। ये दोनों रूप सचित्त तेजस्काय की पर्याय मानी गई हैं।

इस प्रकार हर जैनी जानता है कि इनका प्रयोग करके भोजन बनाने में तेजस्काय के अनन्त जीवों की हिंसा होती है। एक दृष्टि से तो श्रावकों को खाना बनाना ही नहीं चाहिए। लेकिन जीवनयापन के लिए इस हिंसा को 'अपरिहार्य' रूप में मान ली गई है। क्योंकि बिना भोजन बनाये हमारा काम चल नहीं सकता। हमारा इससे कर्मबंध गाढ़ा नहीं हो, इसके लिए कहा गया है (गीता में भी) कि भोजन बनाते वक्त परोपकार की भावना रखिये, साधु-संतों आदि उच्च आत्माओं को परोसने की भावना रखिये। लेकिन यह स्पष्ट जान लें कि जब हम पीने के लिए जल गर्म करते हैं या भोजन बनाने के लिए पकाने, सेकने, तलने व उबालने की क्रिया सम्पन्न करते हैं, तो अग्नि या विद्युत द्वारा की हुई इन साधारण क्रियाओं में 'महा-हिंसा' तो होती ही है। कर्मबंध भले ही गाढ़ा हो या न हो। तेजस्काय की महाहिंसा से बच नहीं सकते।

प्रश्न उठता है कि क्या इस महा-हिंसा से बचने का कोई अन्य विकल्प नहीं हो सकता है? थोड़ा आगमिक चिन्तन करने से पता चलता है कि 'सूर्य की किरणें' सचित्त नहीं होती है। लेकिन इन किरणों में प्रकाश के साथ-साथ गर्मी (ऊष्मा) भी होती है। यदि इस ऊर्जा को केन्द्रित करके पानी उबालने या भोजन बनाने की प्रक्रियाओं में उपयोग किया जाये तो 'अग्नि' की महाहिंसा से आसानी से बचा जा सकता है।

आजकल बाजार में पानी उबालने के लिए तथा भोजन बनाने के लिए 'सौर-चूल्हे' उपलब्ध हो रहे हैं। इनमें अग्निकायिक या विद्युतकायिक जीव पैदा नहीं किये जाते हैं। यदि हम इनका उपयोग करके गैस, कोयला या विद्युत का उपयोग बंद या कम करते हैं तो अग्नि से होने वाली भयंकर महाहिंसा से बच सकते हैं। अतः हर जैनी का सौभाग्य व कर्त्तव्य बनता है कि वह इस तथ्य को समझे तथा इस विकल्प का ज्यादा से ज्यादा घरों में व सार्वजनिक स्थानों में उपयोग करें। मुझे तो लगता है कि जो श्रावक तन, मन और धन से इसका सदुपयोग करते हैं, कराते हैं या अनुमोदना करते हैं, तो वे न केवल महाहिंसा से बचते हैं, बल्कि अन्यों को इससे बचाने का पुण्य भी उपार्जित करते हैं। जैन दृष्टि से ये चूल्हे अहिंसक तो हैं ही, लेकिन साथ में राष्ट्र और पर्यावरण के लिए भी बहुत उपयोगी हैं। क्योंकि इनके उपयोग से आयात होने वाली रसोई-गैस की भारी मात्रा में बचत होगी। सौर ऊर्जा हमें मुफ्त में मिल जाती है। गैस या बिजली का खर्च बच जाता है।

इसके अलावा गैस जलने से या बिजली पैदा करने में जो वायु-प्रदूषण होता है, वह समाप्त हो जाता है। इस तरह सौर-चूल्हा एक साफ-सुथरा प्रदूषण रहित चूल्हा होता है। अतः जीव-अजीव का चिंतन रखने वाले हर समाज को और विशेषकर जैनसमाज को, जो इसका इतना सूक्ष्म विवेचन करता है कि अग्नि को भी सचित्त तेजस्काय मानता है, निम्न संकल्प लेना चाहिए कि-

1. वह ज्यादा से ज्यादा इसका उपयोग करके, अग्नि व विद्युत का उपयोग घटायेगा। महाहिंसा का अल्पीकरण करेगा।

2. इसके प्रचार प्रसार में अपना अधिक से अधिक जैनियों और अजैनियों के लिए भी सक्रिय सहयोग देगा।

3. इन चूल्हों को अधिक विकसित करने के लिए कुछ शोध व परिष्कार की आवश्यकता है। उसके लिए समाज अपने संसाधन, महापुण्य उपार्जन के रूप में सहर्ष लगायेगा। जिससे इन चूल्हों की उपादेयता व कार्य-कुशलता में अपेक्षित वृद्धि हो सके। वैज्ञानिक और टेक्नीशियन लोग इसमें अपनी अहम् भूमिका निभा सकते हैं।

यहाँ यह बात ध्यान में रखने की है कि हम सौर-ऊर्जा को एकत्रित करके मात्र उसके ताप का सीधा उपयोग सौर-चूल्हों में करने की बात करते हैं। सौर-ऊर्जा को विद्युत या अग्नि के रूप में परिवर्तन करने की बात नहीं करते हैं। क्योंकि हमारा उद्देश्य अग्नि और विद्युतकायिक जीवों की रक्षा करने का है। उनकी महाहिंसा से बचने का है। कई लोग सौर-ताप से सौर-विद्युत पैदा करके या सौर-अग्नि पैदा करके, उसका उपयोग करने का विकल्प की बात



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते हैं। हमारा मकसद यह कतई नहीं है। हमारी भावना तो अग्नि और विद्युतकायिक जीवों की महाहिंसा से बचने का प्रभावशाली और आसान विकल्प प्रस्तुत करने की है।

जीवनयापन में 'अपरिहार्य' महाहिंसा मानी जाने वाली प्रक्रिया से गृहस्थों को निजात दिलाने में साधु-समाज भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकता है। उनको भी सौर-चूल्हों के विभिन्न आगमिक बिन्दुओं पर चिन्तन करके, समाज के सामने सही प्रस्तुतीकरण करना चाहिए। हर पाठक से अपेक्षा की जाती है कि वह संतों से इस पर विचार-विमर्श करके, सौर-चूल्हों को परम्परागत चूल्हों के संपूरक के रूप में अपनाने में शीघ्र आगे आयेगा। इस पर होने वाले मूलखर्च को, सुकृत कार्य पर खर्च के सदृश समझेगा। हर शहर का समाज, इस प्रवृत्ति पर अपना विशेष ध्यान देगा तथा एक समयबद्ध लक्ष्य निर्धारित करेगा। ऐसी आशा की जाती है कि अग्निकायिक जीवों की रक्षा करने मे हर सुज्ञ श्रावक एक कदम आगे बढ़कर सोचेगा तथा पुण्य उपार्जन में व अहिंसक बनने मे प्रमाद नहीं करेगा।

40,कमानी सेन्टर, द्वितीय मंजिल
बिस्तुपुर, जमशेदपुर-831001

# जिनागम

डॉ. वीरसागर जैन

चिन्तन का आधार जिनागम,
जीवन का आधार जिनागम।
वह क्या चिन्तन वह क्या जीवन,
जिसकी धरती नहीं जिनागम॥ १ ॥

लेखन का आधार जिनागम,
प्रवचन का आधार जिनागम।
वह क्या लेखन, वह क्या प्रवचन,
जिसकी धरती नहीं जिनागम॥ २ ॥

होगा बड़ा अलौकिक चिन्तन,
होगा बड़ा समर्पित जीवन।
पर वे चिन्तन-मनन दूर हों,
जिनकी धरती नहीं जिनागम॥ ३ ॥

होगी उत्तम लेखन-शैली,
होगी उत्तम प्रवचन-शैली।
जिसकी खूब प्रशंसा फैली,
निकल जाए अभिनन्दन रैली॥ ४ ॥

पर वे लेखन-वचन दूर हों,
लाँघ रहे जो सतत जिनागम।
ठोस धरातल एक जिनागम,
परम सहायक एक जिनागम॥ ५ ॥

जो इसको समझें वे ज्ञानी,
वरना तो सब मूढ़ अज्ञानी।
तातैं रोम-रोम में रखिए,
महापौष्टिक सुधा जिनागम॥ ६ ॥

सोच-समझ कर वचन उचरिये,
पूर्वापर-विरोध से बचिए।
अनेकान्तमय वस्तुरूप को,
स्याद्वाद से कहे जिनागम॥ ७ ॥

रीडर, जैन दर्शन विभाग
एल. बी. एस. राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ,
दिल्ली



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# अतिशय क्षेत्र १००८ श्री अजितनाथ मंदिर, नंदुरबार

सरिता महेन्द्रकुमार झांझरी

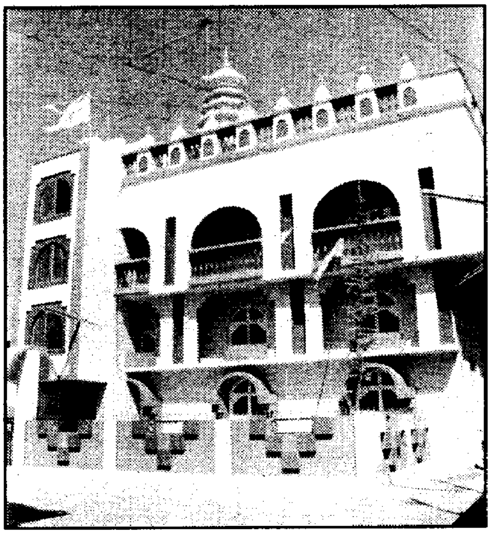

अतिशय क्षेत्र १००८ श्री अजितनाथ मंदिर, नंदुरबार

## मूर्तियों का इतिहास

नंदुरबार। यहाँ दिगम्बर जैन मंदिर ४० साल से है। यहाँ पर इसके पहले दिगम्बर जैन मंदिर नहीं था। यह मूर्तियाँ शहादा तालुका में 'होल मोयदा' कस्बे में से एक पाटिल ने जमीन में से निकालीं। वह पाटिल घर से खेत जाने के लिए निकला, आगे जाने पर उसके पैर को रास्ते में ठोकर लगी इसलिए वह पाटिल वहीं उसी जगह पर बैठ गया व बैठे-बैठे जमीन को अपने हाथ से खोदने लगा। फिर खोदते-खोदते उसके हाथ को गोल-गोल पत्थर है, ऐसा महसूस हुआ तो वह घर आकर खोदने का सामान कुदाली, फावड़ा वगैरह लेकर उस स्थान पर पहुँचा जहाँ उसे ठोकर लगी थी।

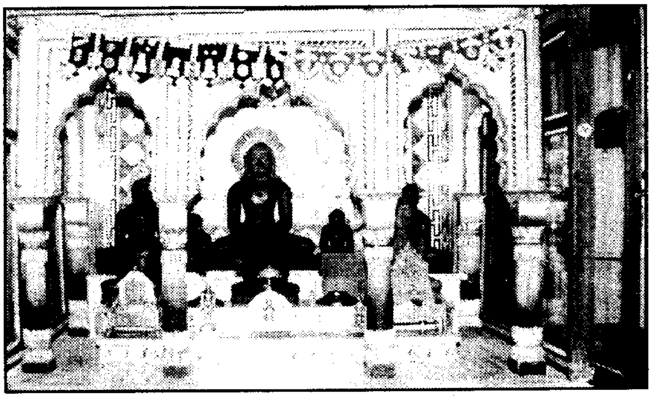

श्री अजितनाथ मंदिर की वेदी

अब पाटिल ने खोदने का काम शुरू किया, खोदते-खोदते उसको भगवान् की मूर्ति दिखी। एक मूर्ति निकालने के बाद अनुक्रम से ७ मूर्तियाँ उसी जगह से निकलीं। ७वीं मूर्ति निकलने के समय एक बैलगाड़ी आई व उस बैलगाड़ी का चक्का उस गड्ढे में गिरा जिससे ७वीं मूर्ति खंडित हो गई। उस मूर्ति को तापी नदी में पथरा दिया गया। बाकी ६ मूर्तियों को पाटिल अपने घर ले गया।

५० साल पहले नंदुरबार में दिगम्बर जैनों का कोई घर नहीं था। अभी जो भी दिगम्बर जैनों के घर हैं, वह सब अलग-अलग गांव से आए हैं। इस समय 'नंदुरबार' में करीब १५ घर हैं।

ऊपर लिखी मूर्तियों का पूजन करने को बुजुर्ग वर्ग 'होल मोयदा' गाँव जाते थे। ३ साल तक बुजुर्ग वर्ग ने पाटिल से मूर्तियों की अनेक बार मांग की परंतु उसने मना कर दिया। फिर उसके घर को एकाएक आग लग गई, तो वह हमारे बुजुर्गों के पास आया और कहने लगा अपनी मूर्तियाँ आप ले जाओ।

उस समय नंदुरबार में कोई दिगम्बर जैन रहता नहीं था, सब आसपास के गाँवों में रहते थे। 'नींबोरा' गाँव में २ जैनियों के घर थे। मूर्तियाँ वहाँ लाई गईं।

मूलनायक आदिनाथ भगवान



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## नदी से प्राप्त मूर्ति का इतिहास

'होलदा' गाँव में एक नदी पास में ही बहती है। उस नदी में ४ 'बोहरा' थे सबमें मूर्तियां थीं, उन सब मूर्तियों में से कुछ को मोंगल राजा ने खंडित कर दिया था, इससे मालूम होता है कि होल मोयदा पहले जैनों का गाँव था।

वहाँ से प्राप्त एक मूर्ति 'महुआ' जी अतिशय क्षेत्र (सूरत के पास) में है जो कि विघ्नहरण पार्श्वनाथ नाम से प्रसिद्ध है।

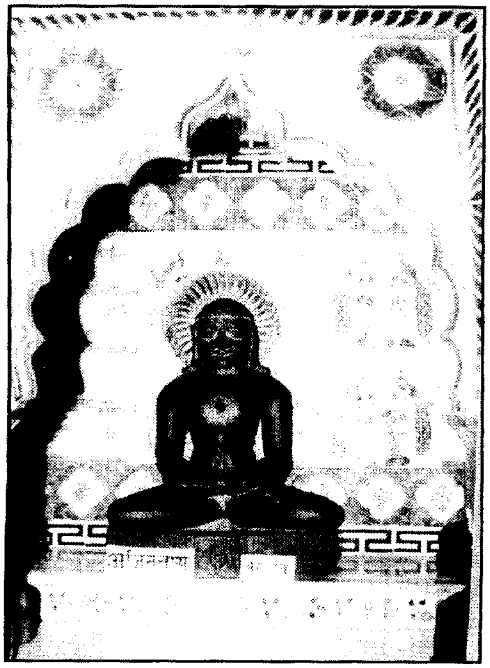

अजितनाथ भगवान

एक मूर्ति शहादे के श्वेताम्बर जैन ने ले ली। एक मूर्ति वहाँ के भील को मिली थी। 'चंद्रप्रभ भगवान्' की एक मूर्ति यहाँ नंदुरबार के मंदिर में आज से करीब १५ साल पहले लाई गई थी।

आगे निंबोरा गाँव में एक ही जैनों का घर रहा और आसपास से जैनी भाई भी नंदुरबार में आकर रहने लगे थे। फिर सर्वसम्मति से नंदुरबार में जगह लेकर मंदिर बनाया और वहाँ मूर्तियाँ विराजमान की गईं।

## अतिशय

१. आज से १४-१५ साल पहले मंदिरजी वेदी में से केसर का पानी निकला था।

२. नंदुरबार पंचकल्याणक १९९४ के समय मूर्तियां जब दूसरी वेदी में (रखी जा) विराजमान की जा रही थी तब वेदी की दीवालों से पानी रिसने लगा था।

३. अजितनाथजी की मूर्ति ५-६ लोग मिलकर उठा सकते हैं। पुराना मंदिर तोड़कर जब नया बनाया जा रहा था उस समय वेदी हिली और गिरने को ही थी कि उसी समय 'महेन्द्र जी झांझरी' ने अकेले ही मूर्ति उठा ली। मूर्ति हाथ में उठाते ही फूल की तरह वह हल्की हो गई और एक सुरक्षित स्थान पर रखी गई जब तक निर्माण कार्य चला, उसके बाद तो अकेले से वह मूर्ति उठी ही नहीं।

४. एक महिला के कार्य की सिद्धी हुई थी उसने मंदिरजी में चांदी का झूला दिया था।

कुल ८ मूर्तियों में से ६ मूर्तियां खेत से प्राप्त एवं २ मूर्तियां नदी से प्राप्त हैं। मूर्तियां काले पाषाण की हैं। १३वीं शताब्दी की हैं। मूर्तियां सुंदर, सौम्य, मंत्रमुग्ध एवं प्रशंसनीय हैं।

इस क्षेत्र में जैन धर्मशाला बन रही है जो अर्थाभाव के कारण पूर्ण नहीं बन पाई।

## नंदुरबार जिले के आसपास बिखरी धरोहर

१. नंदुरबार से १००-१२५ किमी. दूर 'तोरण माल' पहाड़ है। पर्यटन स्थल है। उस पहाड़ी की दीवालों पर दिगम्बर मूर्तियाँ खुदी हुई हैं जैसे ग्वालियर के गोपाचल पर्वत पर खुदी हुई हैं।

दिगम्बर जैनों के ध्यान न देने की वजह से पहाड़ी के लोग उन मूर्तियों को देवता मानते हुए फूल, कुंकुम चढ़ाते हैं। जैन पुरातत्त्व विभाग ध्यान दे तो वे मूर्तियां भी दर्शन के योग्य बन सकती हैं, पहाड़ी पर हैं तो उसका महत्त्व कुछ अलग ही बन जाएगा।

२. यहाँ से ३०-३५ किमी. की दूरी पर 'निझर' एक गाँव है। उस गाँव के बाहर मैदान में जमीन में ५ पांडवों की ७-८ फुट ऊँची ५ मूर्तियाँ दीवाल में खुदी हुई हैं। पर कोई भी वहाँ जाता नहीं है तो ऐसी ही पड़ी हुई हैं।

उपर्युक्त बातें लिखने का मतलब यह है कि आप अपने सदस्यगण को यहाँ नंदुरबार भेजिए और जानकारी हासिल कीजिए।

होल मोयदा नदी में बोहरे में अभी भी मूर्तियाँ हैं ऐसा बुजुर्ग लोग कहते हैं, खोज करने पर शायद और कुछ मूर्तियाँ प्राप्त की जा सकें।

यहाँ पर हस्तलिखित एक प्राचीन ग्रंथ भी है जो 'हरिवंश पुराण' है और कुछ पूजन भी लिखी हुई है जो करीब १००-१२५ साल पुरानी लगती हैं। मंदिर में सफाई करते समय ये पुस्तकें उपलब्ध हुई थीं। भाषा संस्कृत एवं हिन्दी है। लिखने की स्टाइल 'बहीखाता' टाइप की है।

नंदुरबार (महाराष्ट्र)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## बाहुबली निःशल्य थे

**शंका :** क्या बाहुबली के शल्य थी, इसीलिये उनके सम्यक्त्व में कमी थी?

**समाधानः** श्री बाहुबली जी सर्वार्थसिद्धि से चय कर उत्पन्न हुए थे। कहा भी है- आनन्द पुरोहित का जीव जो पहले महाबाहु था और फिर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था, वह वहाँ से च्युत होकर भगवान् वृषभदेव की द्वितीय पत्नी सुनन्दा के बाहुबली नाम का पुत्र हुआ था। महापुराण पर्व १६ श्लोक ६। जो जीव सर्वार्थसिद्धि से चय कर मनुष्य होता है, वह नियम से सम्यग्दृष्टि होता है। (धवल पु. ६ पृ. ५००)। अत: यह कहना कि श्री बाहुबली के सम्यक्त्व में कमी थी, ठीक नहीं है। तप के कारण श्री बाहुबली को सर्वावधि तथा विपुलमती मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न हो गया था। (महापुराण पर्व ३६ श्लोक १४७। अत: श्री बाहुबली के शल्य नहीं थी क्योंकि "निःशल्यो व्रती"॥ १८॥ ऐसा मोक्षशास्त्र के अध्याय सात में कहा है। श्री बाहुबली के हृदय में विद्यमान रहता था कि 'भरतेश्वर मुझसे संक्लेश को प्राप्त हुये हैं', इसलिये भरत जी के पूजा करने पर उनको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। महापुराण पर्व ३६ श्लोक १८६।

**पं. रतनचन्द्र जैन मुख्तार : व्यक्तित्व और कृतित्व, भाग १ पृ.९०**

## कमण्डलु में भूमण्डल : अहिंसक अर्थशास्त्र

"**अत्थं अणत्थमूलं**" (भगवती आराधना, १८०८) अर्थात् धन सभी अनर्थों की जड़ है।

"**आयव्ययमुखयोर्मुनिकमण्डलुरेव निदर्शनम्।**"

(आचार्य सोमदेवसूरि, नीतिवाक्यामृत१८/६,)

अर्थात् आय (आमदानी) एवं व्यय (खर्च) करने की शिक्षा देने के लिए मुनिराज (दिगम्बर जैन साधु) के कमण्डलु को आदर्श बनाना चाहिए। अर्थात् जैसे मुनिराज के कमण्डलु में जल भरने का मुँह बड़ा होता है तथा खर्च करने का छोटा होता है, उसी प्रकार आमदानी का स्रोत व्यापक हो तथा खर्च की मर्यादा रखें, तभी व्यक्ति, परिवार और राष्ट्र उन्नति कर सकते हैं। आय से अधिक खर्च करनेवाले व्यक्ति सदैव कष्ट पाते हैं। राष्ट्र, उद्योगपति एवं गृहस्थ, तीनों के लिए कमण्डलु का यह आदर्श अपनाना चाहिए। हमारा सुझाव है कि राष्ट्र की मुद्रा पर एवं वित्तमंत्री जी के कार्यालय में कमण्डलु का चित्र इसी अभिप्राय से होना चाहिए।

धन के प्रति मर्यादा की शिक्षा ही व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र को सुखी, संतोषी एवं उन्नतिशील बना सकती है। और इसके लिए मुनिराज के कमण्डलु से शिक्षा ली जा सकती है। इसीलिए इसे अहिंसक अर्थशास्त्र भी कहा गया है।

**प्रस्तुति : विकास जैन, अजमेर**

## मृत्यु जीवन की अनिवार्यता

**अरुणा जैन**

मृत्यु दस्तक दे रही है, और साँसे बाहर निकलने के लिए आतुर हैं। एक अकेली आत्मा को जानना ही धर्म है, इस बात की सच्ची अनुभूति होती है सम्राट सिकन्दर को अपनी अंतिम सांसों में, लेकिन वक्त बहुत कम है। पश्चात्ताप से मन द्रवित हो उठता है, आँखें भीग जाती हैं। जिस हिंसा से अर्जित धन को, वैभव को जीवन का लक्ष्य माना, आज वह सब कुछ यहीं छूटनेवाला है। इसीलिए अश्रुपूरित नेत्रों से घोषणा करता है कि मेरा यह शरीर जो कुछ समय बाद शव बनने वाला है,जब भी लोगों के दर्शनार्थ रखा जाए या अंतिम-संस्कार के लिए ले जाया जाए, मेरे दोनों हाथ कफन से बाहर रखें जाएँ, ताकि लोगों को अनुभूति हो सकेगी, इस बात की, कि इस दुनिया से सिर्फ रंक ही नहीं, राजा भी खाली हाथ जाता है।

कहने का अर्थ यही है कि मृत्यु जीवन का विराम है। मृत्यु जीवन की अनिवार्यता है और इसी सत्य से हमें अवगत कराने के लिए साधु-संत हमारे द्वार पर दस्तक देते हैं, ताकि इनकी अंगुली पकड़कर हम परमात्मा तक पहुँच सकें। गुरु की और परमात्मा की शरण ही सच्ची शरण है, क्योंकि यह हमें शिक्षा देती है कि हम भीतर जाती साँसों में निर्मलता भर लें और बाहर निकलती हुई सांसें हमें अहंकार और विकारों से मुक्त कर दें, ताकि हम अच्छा जीवन जी सकें और अच्छी मृत्यु (समाधि-पूर्वक) पा सकें। मृत्यु हमारे जीवन का लेखा-जोखा होती है।

पूज्य मुनिवर क्षमासागरजी ने कहा है कि 'हमारी मृत्यु हमारे जीवन को बताती है कि हमने कैसा जीवन जिया है।'

अच्छा जीवन जीना, और अच्छी मृत्यु पाना व्यक्ति की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

वाशी नगर, नई मुम्बई



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# जिज्ञासा-समाधान

**पं. रतनलाल बैनाड़ा**

**प्रश्नकर्ता:** हजारी लाल जी छीपीटोला, आगरा

**जिज्ञासा :** क्या क्षायिक सम्यग्दर्शन किसी भी संहननधारी जीव के होना संभव है?

**समाधान:** श्री सन्तकम्मपज्जिया के अनुसार दर्शनमोह को क्षपण करने की शक्ति केवल वज्रऋषभनाराच संहननधारी जीवों के ही पाई जाती है। प्रमाण इस प्रकार हैं-पृष्ठ ७९ पर लिखा है, "**पुणोवि अंतिम पंचसंहऽणाणि असंखेज्ज गुणाणिं। कुदो? दुविह संजमगुणसेढिसी ससएणब्भहिंय मणंताणुबंधि विसंयोजयण गुणसेढिसीसयाणित्ति तिण्णिवि एगट्ठं काऊण णामकम्म संबंधीणं अट्ठावीसेण वा तीसेण वा भजिदमेतं होदि त्ति। किमट्ठं दंसणमोहक्खवणगुणसेढीण घेप्पदे? ण, तं खवण (तक्खणं) सत्ती एदेसि संहडणाणं उदयसहिदजीवाणं णत्थि त्ति अभिप्पयादो। विदियतदियमिदिमिदि दोण्हं संहडणाणं उवसंत कसायगुणसेढि किं णमहिदा? ण, दंसणमोहक्खवणा सत्तिविरहिदाणं उवसमसेढि चडणसत्तीण संभव विरोहो होदि त्ति अभिप्पाएण।**"

अर्थ: अंतिम पाँच संहनन असंख्यात गुने हैं। दो प्रकार के संयम गुणश्रेणि शीर्ष और उनसे गुणित अनंतानुबंधी विसंयोजन गुणश्रेणिशीर्ष, इन तीनों को एकत्र करके नामकर्म सम्बन्धी अट्ठाईस अथवा तीस प्रकृतिक स्थान से भाग देने पर होता है। दर्शनमोह क्षपक-गुणश्रेणि का ग्रहण क्यों नहीं किया? इन संहननों के उदयसहित जीवों के दर्शनमोह को क्षपण करने की शक्ति नहीं है। इस अभिप्राय से उसका ग्रहण नहीं किया। दूसरे और तीसरे संहनन वालों की उपशांत-कषाय गुणश्रेणि का ग्रहण क्यों नहीं किया? जिनके दर्शनमोह को क्षपण करने की शक्ति का अभाव है, उनके उपशम श्रेणि पर चढ़ने की शक्ति के होने का विरोध है, इस अभिप्राय से नहीं किया।

इसी ग्रन्थ में पृष्ठ ७६ पर भी इस प्रकार लिखा है, 'इससे पाँचों संहननों के उदय वाले जीवों के दर्शनमोह को क्षपण करने की शक्ति नहीं है। ऐसा कथित होता है।'

संतकम्मपज्जिया प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ है, अत: क्षायिक सम्यक्त्व के लिये प्रथम संहनन आवश्यक है, ऐसा ग्रहण कर लेना चाहिये।

**प्रश्नकर्ता:** श्री रोशनलाल जी, देहली

**जिज्ञासा:** क्या अभव्य एवं दूरानुदूर भव्यों को अनादिअनंत बन्ध होता है तथा मोक्ष प्राप्त करने वाले जीवों को अनादिसान्त बंध होता है, ऐसा मानना उचित है।

**समाधान:** अभव्य एवं दूरानुदूर भव्य के सम्बन्ध में, इस प्रकार समझ सकते हैं-

१. **भव्य**-अनादिसांतबंध (जिसको कभी अनंतानंत काल में मोक्ष प्राप्त होगा) कनकपाषाणवत्।

२. **अभव्य**-अनादिअनंत बंध-अन्धपाषाणवत् (जिसमें सोना है ही नहीं। निमित्त तो मिलेंगे पर सुधेरगा नहीं)

३. **अभव्य सम भव्य (दूरानुदूर भव्य)**-अनादि सान्त बंध-(क्योंकि उनके संसार नाश की शक्ति है। जयधवला २/९०)-कनकपाषाणवत् (जिसे कभी निमित्त नहीं मिलेंगे, अत: सुधेरगा नहीं)

**तात्पर्य-**

१. भव्य में सम्यक्त्व प्राप्त करने की शक्ति है (कभी प्रकट होगी)

२. अभव्य में सम्यक्त्व प्राप्त करने की शक्ति है (प्रकट करने की योग्यता ही नहीं)

३. अभव्य सम भव्य में सम्यक्त्व प्राप्त करने की शक्ति है (प्रकट करने की योग्यता तो है परन्तु निमित्त नहीं मिलेगा क्योंकि सारे दूरानुदूर भव्य अनादिकाल से नित्यनिगोद में हैं और अनंतानंत काल तक नित्यनिगोद में रहेंगे। निकलने का अवसर ही नहीं मिलेगा)

**उदाहरण -**

१. भव्य -(पति सहित पुत्र प्रसव की योग्यता सहित स्त्री)- कभी पुत्र होगा।

२. अभव्य -(बांझ स्त्री के समान)-कभी पुत्र नहीं होगा।

३. अभव्य सम भव्य (विधवा स्त्री के समान जिसके पुत्र प्रसव की योग्यता है)- पति न होने से कभी पुत्र उत्पन्न होने का प्रसंग ही नहीं आयेगा।

**जिज्ञासा :** उपसर्ग कितने प्रकार के होते हैं?

**समाधान:** हरिवंश पुराण १०/४२ में इस प्रकार कहा है-



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**स्त्रीपुंनपुंसकैस्तिर्यग्नृसुरैरष्ट ते कृताः।**
**शरीराचेतनात्वाभ्यामुपसर्गा दशोदिताः॥ ४२॥**

अर्थ- स्त्री, पुरुष और नपुंसक के भेद से तीन प्रकार के तिर्यंच, तीन प्रकार के मनुष्य एवं स्त्री और पुरुष के भेद से दो प्रकार के देव इन आठ चेतनों के द्वारा किये हुए आठ प्रकार के चेतनकृत, एक शारीरिक, कुष्ठादिक की वेदनाकृत और एक अचेतनकृत दीवाल आदि के गिरने से उत्पन्न सब मिलाकर दश प्रकार के उपसर्ग कहे गये हैं।

**प्रश्नकर्ता:** सौ. वंदना जैन, सागर

**जिज्ञासा:** यदि प्रथम गुणस्थानवर्ती जीव बहिरात्मा है और चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीव जघन्य अन्तरात्मा है, तो दूसरे और तीसरे गुणस्थानवर्ती जीवों को क्या माना जाये?

**समाधान:** उपरोक्त जिज्ञासा के समाधान में वृहद् द्रव्यसंग्रह गाथा-१४ की टीका में इस प्रकार कहा है- '**अथ त्रिधात्मानं गुणस्थानेषु योजयति। मिथ्यासासादन मिश्र गुणस्थानत्रये तारतम्यनाधिक भेदेन बहिरात्मा ज्ञातव्यः।**' अर्थ- मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र इन तीन गुणस्थानों में तारतम्य न्यूनाधिक भाव से बहिरात्मा जानना चाहिये।

भावार्थ- प्रथम गुणस्थानवर्ती जीव उत्कृष्ट बहिरात्मा है। द्वितीय सासादन गुणस्थानवर्ती जीव मध्यम अन्तरात्मा है तथा तृतीय मिश्र गुणस्थानवर्ती जीव जघन्य बहिरात्मा है।

कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा १९३ की टीका में भी इसी प्रकार कहा है-'**उत्कृष्ट बहिरात्मानो गुणस्थानादिने स्थिताः, द्वितीये मध्यमाः, मिश्रे गुणस्थाने जघन्यका इति**। अर्थ- प्रथम गुणस्थान में स्थित जीव उत्कृष्ट बहिरात्मा, द्वितीय गुणस्थानवर्ती जीव मध्यम बहिरात्मा और तृतीय गुणस्थानवर्ती जघन्य बहिरात्मा कहे जाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** राजेन्द्र जैन काला, जयपुर

**जिज्ञासा :** क्या भगवान् के दर्शन, जाप, पूजन आदि से मात्र शुभास्रव होता है, निर्जरा बिल्कुल नहीं होती?

**समाधान :** वर्तमान में एकान्त का प्रचार करने वाले कुछ लोग आपके प्रश्न के अनुसार ही मान्यता रखते हैं। उनका कहना है कि जिनपूजा, दर्शन आदि से मात्र पुण्यास्रव होता है, निर्जरा बिल्कुल नहीं होती है। इस प्रश्न का उत्तर आगम के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं, जो इस प्रकार है-

१. श्री धवला पुस्तक-६ पृष्ठ ४२७-२८ पर इस प्रकार कहा है-'**जिणबिंबदंसणेण णिधत्तणिकाचिदस्स वि मिच्छत्तादिकम्म-कलावस्स खयदंसणादो। दर्शनेन जिनेन्द्राणां पापसंघातकुञ्जरम्। शतधा भेदमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा।**' अर्थ-जिनबिम्ब के दर्शन से निधत्ति और निकाचित रूप मिथ्यात्व आदि कर्मकलाप का क्षय देखा जाता है, जिससे जिनबिम्ब का दर्शन प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण होता है।

जिनेन्द्र के दर्शन से पाप संघातरूपी कुञ्जर के (घातिया कर्मों के) सौ टुकड़े हो जाते हैं अर्थात् खण्ड-खण्ड हो जाते हैं, जिस प्रकार वज्र के आघात से पर्वत के खण्ड-खण्ड हो जाते हैं।

२. श्री धवला पुस्तक-१०, पृष्ठ २८९ पर इस प्रकार कहा है-'**जिणपूयावंदणणमंसणेहि य बहुकम्मपदेस णिज्जरुवलंभादो।**

अर्थ- जिनपूजा, वंदना, नमस्कार से भी बहुत कर्मप्रदेशों की निर्जरा होती है।

३. श्री जयधवला पुस्तक-१, पृष्ठ ९ पर इस प्रकार कहा है-**अरहंतणमोकारो संपहिय बंधादो असंखेज्जगुण कम्मखयकारओ त्ति तत्थ वि मुणीणं पवुत्तिप्पसंगादो।**

उक्तं च-

**अरहंतणमोक्कारं भावेण य जो करेदि पयडमदि।**
**सो सव्वदुक्खमोक्खं, पावइ अचिरेण कालेण॥**

अर्थ-अरिहंत नमस्कार तत्कालीन बन्ध की अपेक्षा असंख्यातगुणी कर्मनिर्जरा का कारण है, उसमें भी मुनियों की प्रवृत्ति प्राप्त होती है। कहा भी है-जो विवेकी जीव भावपूर्वक अरिहंत को नमस्कार करता है, वह अतिशीघ्र समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होता है।

भावार्थ-यद्यपि अरिहंत नमस्कार से कुछ बन्ध भी होता है तथापि उस बंध की अपेक्षा कर्म निर्जरा असंख्यातगुणी है इसीलिये अरिहंत नमस्कार करने वाला अतिशीघ्र मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार इन परिणामों से बंध और निर्जरा दोनों कार्य होते हैं तथा मोक्ष भी होता है।

४. दर्शन पूजन आदि शुभ कार्य हैं। इन कार्यों से होने वाले शुभ परिणामों द्वारा कर्मक्षय होता है, इस सम्बन्ध में श्री जयधवला पुस्तक १ पृष्ठ ६ पर इस प्रकार कहा है-**सुह सुद्ध-परिणामेहिकम्मक्खया-भावे तक्खयाणु ववत्तीदो।**

अर्थ-यदि शुभ और शुद्ध परिणामों से कर्मों का क्षय न माना जाये तो फिर कर्मों का क्षय हो ही नहीं सकता। (अर्थात् शुभ परिणामों से कर्म क्षय मानना आगम सम्मत है)

५. श्री मूलाचार में इस प्रकार कहा है-**भत्तीए जिणवराणां खीयदि जं पुव्व संचियं कम्मं॥७८॥** अर्थ-जिनेश्वर की भक्ति रूप शुभभाव से पूर्व संचित कर्मों का क्षय होता है।

६. आचार्य कुन्दकुन्द ने भी भावपाहुड में इस प्रकार कहा है-



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**जिणवरचरणबुरूहं णमंति जे परम-भत्तिरायेण।**
**ते जम्मवेल्लिमूलं, खणंति वरभावसत्थेण॥१५३॥**

अर्थ-जो पुरुष परम भक्ति अनुराग सहित जिनेन्द्र देव के चरण कमलों को नमस्कार करते हैं, वे श्रेष्ठ भाव रूप शस्त्र के द्वारा, जन्म अर्थात् संसार रूपी बेल का जो मूल है, ऐसे मिथ्यात्व को नष्ट करते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त महान् आचार्यों के प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि दर्शन-जाप-पूजन आदि शुभ परिणामों के द्वारा अविपाक कर्म निर्जरा भी होती है

**प्रश्नकर्ता :** सौ. ज्योति लुहाडे, कोपरगांव

**जिज्ञासा :** नित्य निगोदिया जीव अभी निगोद से ही नहीं निकले हैं तो उनके पंचपरावर्तन कैसे गिनें ?

**समाधान:** नित्यनिगोद के जीव अभी तक निगोद से नहीं निकले हैं। उन्होंने त्रस पर्याय या नरक-मनुष्य-देव गति को प्राप्त ही नहीं किया है, अत: इनके सम्बन्ध में पंचपरावर्तन का कथन नहीं सिद्ध होता है। बृहद्द्रव्यसंग्रह गाथा-३५ की टीका में इस प्रकार कहा है-'**अयं तु विशेष:- नित्यनिगोदजीवान् विहाय, पञ्चप्रकारसंसारव्याख्यानं ज्ञातव्यम्। कस्मादिति चेत् नित्यनिगोदजीवानं कालत्रयेऽपि नास्तीति।**' अर्थ-यहाँ विशेष यह है कि नित्यनिगोद के जीवों को छोड़कर पाँच प्रकार के संसार का व्याख्यान जानना। यहाँ प्रश्न ऐसा क्यों? उत्तर-क्योंकि नित्यनिगोद के जीवों को तीनों कालों में भी त्रसपना नहीं है।

**१/२०५, प्रोफेसर कालोनी, हरिपर्वत, आगरा**

# उत्प्रेरक की भूमिका में वास्तुशास्त्र

**पं. लक्ष्मीनारायण द्विवेदी**

क्या जो लोग वास्तुशास्त्र में विश्वास रखते हैं, उन्हें ही वास्तुदोष प्रभावित करते हैं? क्या जो लोग वास्तु को नहीं मानतें हैं, उन पर वास्तुदोष का कोई असर नहीं होता है? ऐसा नहीं है। वास्तुशास्त्र की तुलना चिकित्सा शास्त्र से इस तरह की जा सकती है कि जैसे स्वस्थ जीवन के लिये कुछ नियम-निर्देश हैं, वैसे ही बेहतर जीवन के लिये भी वास्तु के कुछ नियम-निर्देश हैं। यदि कोई व्यक्ति स्वास्थ्य के किसी नियम-निर्देश को नहीं मानता है, तो जरूरी नहीं कि वह बीमार ही हो जाए। बीमार होना, न होना नियम-निर्देश के साथ-साथ व्यक्ति की शारीरिक क्षमता पर भी निर्भर है। उसी तरह वास्तुदोष किस पर कितना प्रभावी होगा, यह इस बात पर निर्भर है कि व्यक्ति के ग्रहयोग कितने प्रबल हैं। **एक फैक्ट्री में अनेक नल टपक रहे हैं, लेकिन फैक्ट्री फायदे में चल रही है। कारण यह है कि फैक्ट्री के मालिक के सितारे बुलंद हैं। नल टपकने के कारण कुछ धन बर्बाद जरूर हो रहा होगा, लेकिन आय इतनी ज्यादा है कि थोड़े से धन की बर्बादी कोई खास असर नहीं दिखा पा रही है।** इससे अलग यदि कोई फैक्ट्री पहले से ही घाटे में चल रही हो और नल टपकने शुरू हो जाएँ, तो यकीनन इसका असर साफ-साफ दिखाई देगा। वास्तु शास्त्र तो उत्प्रेरक की भूमिका निभाता है इसलिये जहाँ तक संभव हो निर्माण के दौरान ही वास्तु के नियम-निर्देशों का पालन करने का प्रयास करना चाहिये। लेकिन पहले से मौजूद छोटे-मोटे वास्तु दोष को लेकर बहुत ज्यादा परेशान होना जरूरी नहीं है। जब तक कोई बड़ा वास्तुदोष न हो और किसी वास्तु दोष के कारण कोई स्पष्ट नुकसान दिखाई न दे, तब तक बेवजह तोड़-फोड़ करना ठीक नहीं है।

**'दैनिक भास्कर', भोपाल 1 जनवरी 2006 से साभार**

**स्वाध्याय** से एक दो दिन में ही आप अपनी प्रतिभा के द्वारा बहुत सी गलत धारणाओं का समाधान पा जायेंगे, लेकिन यह ध्यान रखना कि जो ग्रन्थ आर्षप्रणीत (आचार्यप्रणीत) मूल, प्राकृत व संस्कृत भाषा के ही हों, मुख्यरूप से उन्हीं का स्वाध्याय करना चाहिये।

**'सागर बूँद समाय' से साभार**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# समाचार

## अतिशय क्षेत्र पदमपुरा का मेला सानंद सम्पन्न

(जयपुर) श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पदमपुरा-जयपुर का विशाल मेला वार्षिकोत्सव ८ व ९ अक्टूबर ०५ को क्षेत्र परिसर में विभिन्न धार्मिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों के साथ सम्पन्न हुआ। जिसमें चौबीस तीर्थंकर विधान मण्डल पूजा, व्रत का महत्त्व नाटक का मंचन किया गया। विधान समाप्ति के अवसर पर रथ यात्रा विभिन्न मार्गों से होते हुए पूर्ण लवाजमें के साथ निकाली गई। जिसका स्वागत श्रद्धालुओं ने आरती उतार किया, रथ यात्रा का समापन कलशाभिषेक के साथ हुआ।

**ज्ञानचन्द्र झांझरी**

## शाहदरा दिल्ली में षष्ठ ज्योतिष प्रशिक्षण शिविर सानंद सम्पन्न

परमपूज्य उपाध्याय रत्न श्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज की प्रेरणा से एवं ज्योतिषविज्ञ पं. गजेन्द्र जी जैन, पं. कुलभूषण जी, पं. जयन्तकुमार जी के निर्देशन में षष्ठ ज्योतिष प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया गया। जिसमें मुरैना, मथुरा, सांगानेर, बनारस एवं अन्य स्थानों के ७५ विद्यार्थियों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया।

**सचिन जैन**

## डॉ. कमलेशकुमार जी को मातृशोक

(वाराणसी) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में जैन बौद्ध दर्शन विभाग के रीडर एवं जैन जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ. कमलेशकुमार जैन वाराणसी की माँ श्री मती जानकीबाई जैन (कुलुवा) का १७. ११. २००५ को दोपहर ११.४५ बजे जिनेन्द्र देव का स्मरण करते हुए स्वर्गवास हो गया। वे ८५ वर्ष की थीं।

आप मिलनसार, मृदुभाषी एवं धर्मपरायण के साथ-साथ सादा जीवन उच्च विचार रखने वाली महिला थी। आप अन्त समय तक जिनेन्द्रदेव का स्मरण करती रहीं। आप अपने पीछे भरा पूरा परिवार छोड़ गयी हैं।

आपके निधन पर अनेक विद्वानों, शुभचिंतकों, मित्रों रिश्तेदारों आदि ने गहरा शोक व्यक्त किया है। इस अवसर पर श्री स्याद्वाद महाविद्यालय में आयोजित शोकसभा में श्रद्धांजलि अर्पित की।

**सुनील जैन संचय**

## दयोदय पशु सेवा केन्द्र (गौशाला) सेसई, सम्मानित

(शिवपुरी) गौसेवा एवं पशु संवर्द्धन बोर्ड के अध्यक्ष श्री मेघराज जी जैन, बोर्ड के सदस्य श्री पदम बरैया द्वारा दयोदय पशु सेवा केन्द्र (गौशाला) सेसई का अवलोकन किया गया, सेसई गौशाला के महामंत्री श्री चंद्रसेन जैन ने विस्तृत रूप से गौशाला एवं अन्य आगामी योजनाओं की जानकारी देते हुये गायों को भी दिखाया, अतिथि द्वय ने गौशाला एवं वहाँ की व्यवस्थाओं को देखकर महामंत्री सहित स्टॉफ की सराहना की। श्री सिद्धचक्र महामण्डल विधान के आयोजन कर्ता श्री ओमकार लाल जैन आयकर अधिकारी ने बोर्ड के अध्यक्ष श्री मेघराज जी सहित सातों जैन मंदिर के अध्यक्षों का सम्मान किया एवं गौवंश के संरक्षण संवर्द्धन के बारे में विस्तृत जानकारी दी। और कहा कि सेसई की गौशाला जिले भर में सुचारु रूप से संचालित है।

**सुरेश जैन मारौरा**

## नेशनल सेमिनार ऑन जैनोलोजी : एक ऐतिहासिक सफलता

परमपूज्य सराकोद्धारक शाकाहार प्रवर्तक उपाध्याय रत्न श्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज की पावन प्रेरणा एवं सान्निध्य में इतिहास अध्ययनशाला, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर एवं श्रुतसंवर्द्धन संस्थान, मेरठ तथा जैनमिलन, ग्वालियर के संयुक्त तत्त्वावधान में "जैनविद्या" पर २६-२७ नवंबर २००५ को एक द्विदिवसीय राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी का आयोजन स्टेट इन्स्टीट्यूट ऑफ हेल्थ मेनेजमेंट एण्ड कम्यूनिकेशन सिटी सेन्टर, ग्वालियर के सभागार में सुबह १० बजे विधिवत् सम्पन्न हुआ। यह एक ऐतिहासिक आयोजन था। इस आयोजन की खास बात यह रही कि जीवाजी विश्वविद्यालय के अंतर्गत सर्वप्रथम जैनविद्या पर स्वतंत्र रूप से इस विशाल सेमिनार का आयोजन हुआ, जिसमें अंतर्राष्ट्रीय स्तर के विद्वानों ने जैनधर्म की विभिन्न विधाओं पर अपने विचार प्रस्तुत किये। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि इस द्विदिवसीय आयोजन में विद्वानों को परम पूज्य उपाध्याय रत्न ज्ञानसागर जी महाराज का सान्निध्य एवं मंगल प्रवचनों का लाभ प्राप्त हुआ। इस सेमिनार के संयोजक डॉ. एस. के. द्विवेदी, समन्वयक इतिहास अध्ययनशाला, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर थे।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयोजक मंडल में प्रो. नीरज जैन, प्रो. ए. के. जैन, डॉ. आर. ए. शर्मा, डॉ. ए. के. सिंह, डॉ. आर. जी. गर्ग, श्री शैलेन्द्र जैन, डॉ. सुमन जैन, डॉ.एस.एम. त्रिपाठी, डॉ. जे.एस. जोशी, डॉ. एस. डी. सिसौदिया जीवाजी विश्वविद्यालय आदि का सहयोग प्राप्त था।

**नवनीत जैन**

## म. प्र. लोकसेवा आयोग में प्रविष्ट ७२ में से ६४ उत्तीर्ण

परमपूज्य श्री १०८ आचार्य विद्यासागर जी महाराज के आशीष व प्रेरणा से संचालित श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन प्रशासकीय प्रशिक्षण संस्थान के म. प्र. लोक सेवा आयोग की प्री परीक्षा में प्रविष्ठ ७२ में से ६४ प्रशिक्षार्थी का उत्तीर्ण होना गौरव एवं हर्ष का विषय है। ९ दिसम्बर की शाम जैसे ही रिजल्ट आना प्रारम्भ हुआ वैसे ही प्रशिक्षार्थियों का इन्टरनेट पर रिजल्ट जानना प्रारम्भ किया एवं दूसरे दिन १२ बजे तक ७२ में से ६४ प्रशिक्षार्थियों का उत्तीर्ण होना पुष्ट हुआ।

**अजित जैन निदेशक**

## साइलेंट सॉइल मूकमाटी की प्रथम प्रति आचार्य श्री को भेंट की

कुण्डलपुर (हटा) आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज द्वारा रचित 'मूकमाटी' महाकाव्य का अंग्रेजी संस्करण साइलेंट सॉइल (SILENT SOIL) प्रथम संस्करण २७ नवम्बर २००५ को चौबीस तीर्थंकर समवशरण कल्पद्रुम महामण्डल विधान के प्रसंग पर प्रकाशित हुआ था। जिसकी प्रथम प्रति सिद्धक्षेत्र / अतिशय क्षेत्र कुण्डलपुर (म.प्र.) में विश्ववंदनीय आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज को अनुवादक ने समर्पित की। एक सौ पचास रुपये मूल्य वाली यह कृति भगवान् ऋषभदेव ग्रन्थमाला, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर संघी जी, सांगानेर जिला-जयपुर (राज.) से प्राप्त की जा सकती है। फोन नं. ०१४१-२७३०३९० बेबसाइट **WWW. Jain info. org** ।

इस अवसर पर मूकमाटी का अंग्रेजी रूपान्तरण करने वाले श्री ज्ञानचन्द बिल्टीवाला, बिल्टीवाला हाऊस, राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट के पीछे, किशनपोल बाजार, जयपुर (राज.) का सम्मान किया गया।

**जयकुमार 'जलज' हटा**

## कोटा में महिला सम्मेलन सम्पन्न

महिला सम्मेलन सकल दिगम्बर जैन समाज समिति- महिला प्रकोष्ठ, कोटा द्वारा दिनांक २२.१२.०५ को दिगम्बर जैन नसियां दादाबाड़ी में सम्मेलन का आयोजन हुआ। सम्मेलन में वार्ता का विषय था-''टी. वी. चैनल एवं पाश्चात्य संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में महिलाओं का दायित्व''।

श्री महिला दिगम्बर जैन समाज समिति महिला प्रकोष्ठ की स्थापना ३०.८.०५ को की गई जिसकी संयोजक श्रीमती डॉ. संतोष जैन हैं। जिनके अथक प्रयासों से इस सम्मेलन के आयोजन का विचार आया और सफल क्रियान्विति हुई इस सम्मेलन का सौभाग्य था कि इसे मुनि श्री १०८ सुधासागर जी महाराज का ससंघ सान्निध्य प्राप्त हुआ, इस महिला सम्मेलन में कोटा शहर के २२ महिला मण्डल प्रतिभागी बने। एवं सम्मेलन में १९ प्रतिभागियों ने भाग लिया।

टी. वी. चैनल की उपयोगिता एवं अनुपयोगिता पर प्रश्नावली द्वारा सर्वेक्षण किया गया है। इस सम्मेलन की सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि सभी महिलाओं की सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पास किया गया, जिसके मुख्य बिन्दु थे-

१. टी. वी. देखना उचित है पर देखने वाले की सोच और मानसिकता गलत नहीं होनी चाहिए।

२. टी. वी. यदि होतो कुछ अच्छे चैनल जैसे न्यूज, ज्योग्राफिकल आदि के अतिरिक्त अन्य चैनल लॉक रहें, सिफ ज्ञानवर्धन कार्यक्रम ही देखे जायें।

३. हर माँ अपने बच्चों कहानी सुनाए।

४. बच्चों को लेकर माँ टी. वी. नहीं देखेंगी।

५. बच्चों को अभिषेक एवं पूजन नियमित रूप से करवायेंगी ।

अन्त में इस सम्मेलन का मुख्य आकर्षण मुनि श्री १०८ सुधासागर जी महाराज का विषय से सम्बन्धित प्रवचन। सुधासागर जी ने कहा कि घर घर टी.वी. की बीमारी का कारण संयुक्त परिवार प्रथा का लुप्त होना और एकांकी परिवार का जन्म। हर माँ अपनी बेटी में अच्छे संस्कार डाले इसके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि माँ स्वयं सुसंस्कारित हो। हर सास बहू को सुधारने से पहले बेटी को सुधारें यानि बेटी को अच्छे संस्कार दिए जाए तो परिवार का माहौल अपने आप सुधर जायेगा। अन्त में प्रतियोगिता में विजेताओं को पुरुस्कृत श्री राजमल जी पाटौदी के सौजन्य और का कमलों द्वारा किया गया।

**संतोष जैन**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

### नेहरू नगर भोपाल में

## पंचकल्याणक एवं मानस्तम्भप्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न

संत शिरोमणि परमपूज्य श्री१०८ आचार्य विद्यासागर जी महाराज के आशीर्वाद से मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में नेहरू नगर स्थित नवीन दिगम्बर जैन मंदिर की प्राणप्रतिष्ठा हेतु दिनांक १ दिसम्बर से ७ दिसम्बर २००५ तक आयोजित श्री१००८मज्जिनेन्द्र पंचकल्याणक मानस्तम्भ जिनबिम्ब प्रतिष्ठा एवं नगर गजरथ महोत्सव आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परम तपस्वी शिष्य 'जंगल वाले बाबा'१०८ मुनि श्री चिन्मयसागर जी महाराज के मंगल सान्निध्य में श्री अजितनाथ दिगम्बर जैन मंदिर नेहरूनगर (कोटरा) एवं सकल दिगम्बर जैन समाज भोपाल द्वारा आयोजित किया गया था। नगर गजरथ महोत्सव का निर्देशन किया प्रतिष्ठाचार्य पंडित गुलाबचन्द्र जी पुष्प एवं महोत्सव के प्रतिष्ठाचार्य थे पंडित जयकुमार निशांत एवं इनका सहयोग किया पंचकल्याणक महोत्सव के सूत्रधार पंडित कमलकुमार कमलांकुर ने। अन्य सहयोगी ब्र. नितिन भैय्या जी खुरई, पंडित जयकुमार शास्त्री, बस्तर, पंडित मनीष जैन, टीकमगढ़ एवं पंडित राजेश राज भोपाल थे।

परम तपस्वी संत जंगल वाले बाबा मुनि श्री चिन्मयसागर जी महाराज ने अपने सारगर्भित प्रवचन में कहा कि भगवान् के गर्भ में आने के साथ ही सम्पूर्ण संसार में सुख और शांति का वातावरण निर्मित हो जाता है और केवल मनुष्य ही नहीं वरन् पशु पक्षी और वनस्पति जीव भी सुख का अनुभव करते हैं। जिस तरह पंचकल्याणक के माध्यम से पाषाण को भगवान् बनाया जाता है, उसी तरह मनुष्य भी भगवान् बन सकता है, यदि वह अपनी गलतियों की तरफ ध्यान दे।

जन्मकल्याण्क के अवसर पर अपने सारगर्भित प्रवचन में कहा कि आज का दिन बहुत ही पावन है। आज सुबह 7:30 बजे आप लोगों ने बालक आदिकुमार का जन्म होते हुए देखा। उन्होंने जन्मकल्याणक के समय स्वर्ग में होने वाली मनोहारी क्रियाओं का संक्षिप्त वर्णन किया। मुनि श्री ने कहा जन्म तो सभी का होता है लेकिन तीर्थंकर का जन्म कल्याणक के रूप में मनाया जाता है, क्योंकि तीर्थंकर-आत्मा संसार में जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त कर लेती है।

तप कल्याणक पर प्रकाश डालते हुये मुनि श्री ने बतलाया कि मोह का त्याग करने से ही निर्वाण की प्राप्ति संभव है। इसके लिये निस्पृह और निर्ग्रन्थ होना चाहिये। देहात का व्यक्ति जब शहर में पहुँचता है अर्थात् प्राकृतिक जीवन से कृत्रिम जीवनवाले स्थान में जाता है तब वहाँ की चकाचौंध और बाजारों को देखकर उसका मन भटकने लगता है। उसमें सारी दुनिया को खरीदने की चाहत पनपने लगती है।

जैन-जैनेत्तर जनसमुदाय को सम्बोधित करते हुये कहा कि झंडे के तीन रंगों में केसरिया त्याग का प्रतीक है, सफेद शांति का प्रतीक है और हरा प्रकृति का प्रतीक है। हम सभी कृत्रिम जीवन जी रहे हैं, इसलिये मेरा कहना है कि प्रकृति में लौट आइये (रिटर्न टू नेचर)। युवाओं के लिये उन्होंने कहा कि अगर युवाओं का जोश एवं वृद्धों का होश मिल जायें, तो जयघोष होता है, वरना नहीं मिलने पर अफसोस होता है। धर्म के बिना देश असुरक्षित है। देश धर्म और संस्कृति जब तक सुरक्षित नहीं, तब तक हम और आप भी सुरक्षित नहीं हैं। संत ही देश की संस्कृति,सम्पत्ति है। शांति और सच्चाई के मार्ग पर चलने वाले ही संत कहलाते हैं। उन्होंने कहा हमें कोई गैरजिम्मेदार न ठहरा सके, ऐसी जिम्मेदारी निभायें। सभी उपस्थित जनों से कहा कि धन नहीं विश्वास कमाओं, सर्वोच्च शिखर पर पहुँच जाओगे।

मुनि श्री ने पंचकल्याणक महोत्सव के छठे दिन जो कि मोक्षकल्याणक का था, अपनी मंगल वाणी से कहा कि जैनदर्शन में मृत्यु का भी महोत्सव होना विशेष आदर्श है। अगली आयु का बंध किए बिना देह का त्याग ही निर्वाण है। निर्वाण का अर्थ जन्म-मरण से रहित हो जाना। उन्होंने उपस्थित आमंत्रितों से कहा कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना कर्तव्य करते रहना चाहिये क्योंकि दायित्वों को निभाना ही सबसे बड़ा धर्म है। राजा को हमेशा धर्मधारी होना चाहिये ऐसा होने पर उसका राज्य सुख और शांति से चलता रहता है।

संध्या को गजरथ फेरी के समापन एवं भगवान् के कलशाभिषेक के बाद अपने सारगर्भित प्रवचनों में कहा कि संसार की अशांति को देखकर संत दुखी होता है। प्राणी मात्र की समस्या ही मेरी समस्या है। शरीर आदि की मेरी कोई समस्या नहीं है। संत हमेशा शांति एवं कृपा का संचार करते हैं।

**सुकुमाल जैन**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# कुण्डलपुर को पुरातत्त्व से
## मुक्त करने की माँग

• सुनील बेजीटेरियन

दमोह। शाकाहार उपासना परिसंघ ने धार्मिक स्थलों पर बेवजह पुरातत्त्व के हस्तक्षेप को समाप्त करने तथा कुण्डलपुर तीर्थ को जैन समुदाय को सुपुर्द करने की माँग की है।

परिसंघ के प्रवक्ता सुनील बेजीटेरियन ने कहा कि जैन समुदाय कुण्डलपुर तीर्थ को विकसित कर एक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का तीर्थ स्थल बनाना चाहता है, जबकि कुछ लोग पुरातत्त्व और प्राचीनता के नाम पर विकास के काम को अवरुद्ध करने का प्रयास कर रहे हैं। मन्दिर का पुराना ढाँचा बेहद कमजोर हो गया था, जो कभी भी किसी भी भूकम्प के एक ही झटके में धराशायी हो सकता था, जिससे न सिर्फ अनेक श्रद्धालुओं की मौत हो सकती थी, वरन् पुरातत्त्व की अनमोल धरोहर तथा जैन समाज के प्राणनाथ अतिशयकारी बड़े बाबा की भव्य प्रतिमा भी खतरे में पड़ सकती थी। कुछ वर्ष पूर्व जबलपुर में आये भूकम्प से बड़े बाबा की मूर्ति की पीछेवाली दीवार की नींव ढीली पड़ गयी थी, जिसे पीछे से पत्थरों की अतिरिक्त दीवाल बनाकर अस्थाई तौर पर सहारा दिया गया था। बड़े बाबा के मंदिर एवं मंडप की छत के पत्थरों में भी दरार आ गयी, जिसके कारण लकड़ी के लट्ठे आदि लगाकर सहारा दिया गया था। वर्षा आदि का जल दीवालों में भरने से बड़े बाबा की प्रतिमा नीचे जमीन में धीरे-धीरे धसकती जा रही थी।

इसके अलावा बड़े बाबा की स्वयं की इच्छा के विरुद्ध कोई भी अन्य शक्ति उन्हें अपने स्थान से टस से मस नहीं कर सकती थी। अतिशयवान् बड़े बाबा के सामने कहा जाता है कि प्रार्थना करने पर मनोकामना पूर्ण होती है, ''देते नहीं देखा, पर झोली भरी देखी'' ऐसे बाबा के दर्शन, पूजन को प्रतिदिन हजारों लोग आते हैं। छत और दीवाल के टूटने से कोई अनहोनी न हो, इसलिए बाबा को किसी सुरक्षित स्थान पर बिठाना आवश्यक था। शांतिपूर्ण ढंग से और सुरक्षित रूप से बड़े बाबा को नये स्थान पर विराजमान करने के लिए लाखों श्रद्धालुओं ने करोड़ों मंत्रों का जप किया। हवन, पूजन एवं उपवास के फलस्वरूप बड़े बाबा स्वयमेव ही नाम मात्र के प्रयास से नये स्थान पर जा विराजे।

इसके अतिरिक्त यदि अल्पसंख्यक आयोग के पूर्व अध्यक्ष श्री इब्राहीम कुरैशी जी के वक्तव्य पर ध्यान दिया जाये कि अल्पसंख्यक समाज अपनी भावनाओं के अनुरूप अपने अविवादित धार्मिक स्थलों में परिवर्तन का हकदार है, तो इस परिवर्तन को भी बल मिलता है।

यदि पुराने मंदिर के जर्जर हो गये ढाँचे से उठाकर, बड़े बाबा को सुरक्षित बड़े मंदिर में जैन समाज बिठाना चाहता है, तो इसमें हाय-तौबा मचाने की क्या आवश्यकता? जो कार्य पुरातत्त्व की उदासीनता के चलते नहीं हो सका, उसे जैन समाज ने अंजाम दे दिया, क्योंकि हजारों वर्षों से जैन समाज ही इसकी देखरेख करता आ रहा है। जैन समाज द्वारा दिल्ली के नोयडा में बनाये गये अक्षरधाम मंदिर की तर्ज पर बनाये जा रहे कुण्डलपुर में बड़े बाबा के १७१ फुट ऊँचे मंदिर के बन जाने के पश्चात् जहाँ विश्वभर के पर्यटक आवेंगे, वहीं दमोह का नाम विश्व के मानचित्र पर स्वतः ही उभर आयेगा, और क्षेत्र के विकास के साथ-साथ समृद्धि व रोजगार के अच्छे अवसर निर्मित होंगे।

इस प्रकार पुरातत्त्व की अनुपम धरोहर को सुरक्षित स्थान पर विराजमान कर असंख्यात श्रद्धालुओं की भावना को साकार रूप मिला है।

**संयोजक**

**शाकाहार उपासना परिसंघ, दमोह**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि नं. UP/HIN/34497/24/1/2005-TC

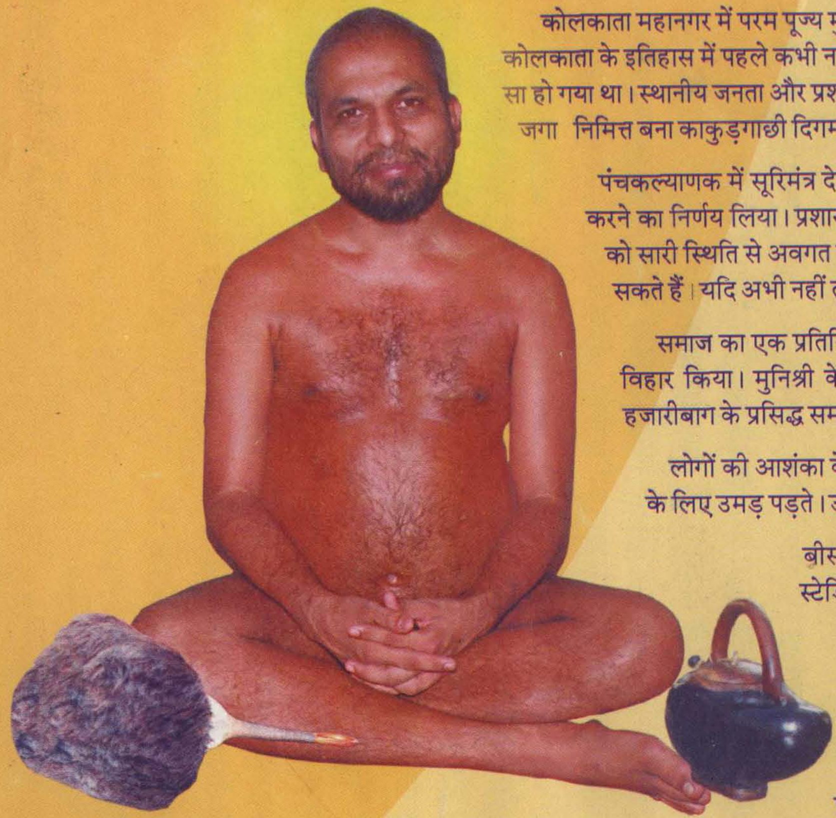

कोलकाता महानगर में परम पूज्य मुनिश्री प्रमाणसागरजी द्वारा अभूतपूर्व धर्म प्रभावना हो रही है। जन-जन के मुख से केवल यही निकल रहा है कि ऐसा कोलकाता के इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ। विदित हो कि विगत कुछ वर्ष पूर्व कोलकाता में घटित अप्रिय प्रसंगों के कारण यहाँ मुनियों का आगमन बंद सा हो गया था। स्थानीय जनता और प्रशासन के असहयोगात्मक रुख के कारण समाज भी भयभीत और सशंकित था। अचानक कोलकाता वासियों का पुण्य जगा निमित्त बना काकुड़गाछी दिगम्बर जैन मंदिर का पंचकल्याणक।

पंचकल्याणक में सूरिमंत्र देने हेतु मुनिराज को लाने हेतु काफी उहापोहात्मक स्थिति थी। समाज के कुछ उत्साही लोगों ने मुनिश्री को आमंत्रित करने का निर्णय लिया। प्रशासनिक अवरोध भी दूर कर लिए गए। समाज के एक प्रतिनिधिमंडल ने मुनिश्री के पास हजारीबाग पहुँचकर मुनिश्री को सारी स्थिति से अवगत कराते हुए कहा कि कोलकाता में मुनियों के विहार का मार्ग खोलने का यह अद्भुत मौका है। इसे केवल आप ही कर सकते हैं। यदि अभी नहीं तो कभी नहीं वाली बात है।

समाज का एक प्रतिनिधिमंडल आचार्यश्री के पास बीना (बारहा) पहुँचा। वहाँ आचार्यश्री से आज्ञा पाकर मुनिश्री ने कोलकाता की ओर विहार किया। मुनिश्री के साथ में क्षुल्लक श्री सम्यक्त्वसागरजी, ब्र. शांतिलालजी (बाबाजी) एवं ब्र. रोहित भी थे। इसके अतिरिक्त हजारीबाग के प्रसिद्ध समाजसेवी श्री छितरमल जी पाटनी एवं धर्मचंद जी काला के नेतृत्व में पचास लोग मुनिश्री के साथ विहार कर रहे थे।

लोगों की आशंका के विपरीत गाँव की जनता ने मुनिश्री का अभूतपूर्व स्वागत किया। जहाँ कहीं मुनिश्री विश्राम करते सैकड़ों लोग दर्शन के लिए उमड़ पड़ते। उनसे प्रवचन का आग्रह करते। रात्रि दस बजे तक बंगाली जनता का दर्शन हेतु ताँता लगा रहता।

बीस दिन की अथक पदयात्रा के बाद मुनिश्री कोलकाता पहुँचे। वहाँ मुनिश्री की अद्भुत अगवानी हुई। साल्ट लेक स्टेडियम के विशाल पांडाल में मुनिश्री के मंगल प्रवचन हुए। पहले ही दिन जनता मंत्रमुग्ध हो गई।

पंचकल्याणक सानन्द सम्पन्न हुआ। उसके बाद मुनिश्री बेलगछिया दिगम्बर जैन मंदिर में विराजमान हुए। वहाँ मुनिश्री के दैनिक प्रवचनों में पूरे कोलकाता के लोग उमड़ पड़े। रविवार के दिन तो पूरा महानगर ही बेलगछिया में दिखाई पड़ता था। मुनिसंघ व्यवस्था समिति कोलकाता ने अपनी ओर से बड़ी उत्तम व्यवस्था बनाई हुई थी।

इसी बीच नववर्ष के शुभ अवसर पर मुनिश्री का दो दिवसीय सार्वजनिक प्रवचन देशबंधु पार्क के विशाल प्रांगण में हुआ। कोलकाता महानगर के इतिहास में किसी दिगम्बर मुनि का यह पहला सार्वजनिक प्रवचन बना। दोनों दिन दिल और दिमाग को झकझोर देने वाले मुनिश्री के मार्मिक प्रवचनों में पाँच हजार से अधिक श्रोताओं की भीड़ थी, जिसमें स्थानीय अजैन काफी संख्या में शामिल थे। उन्होंने मुनिश्री की सार्वग्राह्यता को प्रमाणित कर दिया।

बेलगछिया से विहार कर मुनिश्री बड़ा बाजार, पुरानी बाड़ी मंदिर और बड़ा मंदिर होते हुए हावड़ा की ओर आए। समाज ने मुनिश्री का अभूतपूर्व स्वागत किया। मुनिश्री के साथ डेढ़-दो हजार लोग पैदल विहार कर रहे थे। वर्तमान में मुनिश्री हावड़ा के डवसन रोड स्थित दिगम्बर जैन मंदिर में विराजमान हैं। वहाँ उनके नियमित प्रवचनों में हजारों श्रद्धालु उमड़ रहे हैं।

मुनिश्री के इस प्रवास से कोलकाता महानगर के लोगों में दिगम्बर मुनि के प्रति एक अलग आस्था बनी है। निश्चित ही मुनिश्री का यह प्रवास कोलकाता में दिगम्बर जैन मुनियों का निर्बाध विहार का मार्ग खोलेगा।

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, जोन-1, महाराणा प्रताप नगर,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org